पर्युषण-सन्देश



लेखक
जशकरण डागा



प्रकाशक
ग्ग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

पर्युषण-सन्देश

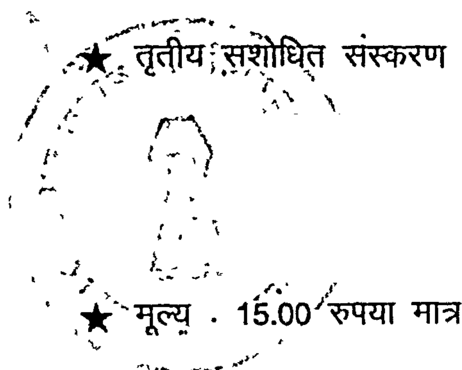
★ प्रकाशक .

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान न 182-183 के ऊपर

बापू बाजार, जयपुर-302 003 (राजस्थान)

फोन · 565997



★ तृतीय संशोधित संस्करण

★ मूल्य · 15.00 रुपया मात्र

मुद्रक :

दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस

मोती सिह भौमियो का रास्ता

जौहरी बाजार, जयपुर

फोन : 562929, 564771

प्रकाशकीय

महान् क्रियोद्धारक स्व पूज्य आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी म सा की स्वर्गवास शताब्दी (२००२) के पुनीत प्रसग पर परम श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा के सदुपदेशो से प्रेरित-प्रभावित होकर सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की स्थापना की गई। मडल द्वारा सम्यग्ज्ञान के प्रचार-प्रसार की विविध प्रवृतिया सचालित की जा रही है। जिनमे मुख्य है— 'जिनवाणी' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, सामायिक व स्वाध्याय सघ का सचालन तथा जीवनोन्नायक सत् साहित्य का प्रकाशन।

अब तक मडल द्वारा आगमिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, तात्विक, कथात्मक, स्तवनात्मक, प्रवचनात्मक, व्याख्यात्मक आदि विविध विषयक पुस्तके प्रकाशित की जा चुकी है।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा की बराबर यह प्रेरणा रही कि श्रुत ज्ञान की ओर लोगो की विशेष रूचि जगे और शास्त्रीय अध्ययन-अध्यापन की एक व्यवस्थित पद्धति समाज मे विकसित-प्रचलित हो। स्वाध्याय सघ की योजना के पीछे भी यह प्रमुख लक्ष्य रहा है। स्वाध्याय सघ के ५०० से अधिक सदस्य हे जो सत-सतियो के चार्तुमासो से वचित श्रेत्रो मे पर्युषण के दिनो मे पर्युषण पर्व की सम्यक् आराधना मे विशेष सहयोग व प्रेरणा देने के लिए देश के विभिन्न क्षेत्रो मे जाकर अपनी सेवाए गत कई वर्षो से दे रहे है। इस काल मे वे स्वय सवर-वृत्ति मे रहकर सयम-साधना का आदर्श प्रस्तुत करते है।

ये स्वाध्यायी बधु एक प्रकार से सास्कृतिक और आध्यात्मिक जागरण के अग्रदूत है। ये नि स्वार्थ भाव से आठ दिनो तक क्षेत्र विशेष को अपनी सेवाये देते है । आचार और विचार दोनो के सम्यक् योग

से ग्रुप रूप का पर्युषण पर्वाराधन उस क्षेत्र विशेष के लिए बड़ा उपयोगी और प्रेरणाकारी सिद्ध होता है। इनकी विद्यमानता से उस क्षेत्र का सुषुप्त जनमानस आध्यात्मिक चेतना और धर्म-धारणा से स्पन्दित हो उठता है। अष्ट दिवसीय साधना से उस क्षेत्र विशेष के लोगो को न केवल तत्व ज्ञान मिलता है वरन् उनमे धर्म-रूचि भी जागृत होती है जो उनके भावी जीवन-निर्माण में सहायक बनती है।

नये स्वाध्यायी तैयार करने और जो स्वाध्यायी अपनी सेवायें देते चले आ रहे है उनके आगमिक एव धार्मिक ज्ञान को और अधिक पुष्ट बनाने की द्रष्टि से जहा समय-समय पर स्वाध्यायी प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये जाते है, वहॉ स्वाध्यायियो के लिए उपयोगी साहित्य का प्रकाशन भी किया जाता है। प्रस्तुत पुस्तक **'पर्युषण सन्देश'** उसी क्रम मे एक कड़ी है।

इस पुस्तक के लेखक टोक निवासी श्री जशकरण जी डागा विशिष्ट तत्वज्ञ और वरिष्ठ स्वाध्यायी है । विगत कई वर्षो से श्रीमान् डागा सा. स्वाध्यायी के रूप मे देश के विविध क्षेत्रो मे पर्युषण के दिनो मे अपनी सेवाये देते आ रहे है । वे तत्त्व विचारक और कुशल लेखक भी है । उनके तात्विक लेख 'जिनवाणी' व अन्य पत्र-पत्रिकाओ मे बराबर प्रकाशित होते रहते है। स्वाध्यायियो के लिये तैयार इस पुस्तक के लिये हम उनके आभारी है।

पुस्तक के सम्पादन-परिष्करण आदि मे राजस्थान विश्वविधालय जयपुर मे पत्रकारिता विभाग के एसोसियेट प्रोफेसर श्री संजीव भानावत ने हमे सहयोग प्रदान किया है, अत हम उनके भी आभारी है।

इस पुस्तक के दो संस्करण प्रकाशित किये गये तथा इसकी माग बराबर आती रही, अत· तृतीय सरकरण के रूप मे प्ररतुत कृति आपके समक्ष है। प्रस्तुत पुस्तक के प्रुफ रिडिग मे श्री जम्बू कुमार जी जैन

जयपुर का सहयोग मिला है। एतदर्थ उन्हे .धन्यवाद।

पुस्तक का मुद्रण कार्य शीघ्रता मे हुआ है, अत सावधानी रखते हुए भी त्रुटिया रह जाना सभव है । पाठको से अनुरोध है कि वे इसके लिए क्षमा करे एव उन त्रुटियो से सूचित करावे ताकि परिमार्जन किया जा सके ।

आशा है, प्रस्तुत कृति स्वाध्यायियो एव सामान्य पाठको के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

डॉ सम्पतसिह भाण्डावत	टीकम चन्द हीरावत	विमल चन्द डागा
अध्यक्ष	कोषाध्यक्ष	मत्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर।



तृतीय सस्करण पर लेखक के

दो शब्द

"पर्युषण सन्देश" पुस्तक का प्रथम व द्वितीय सस्करण अल्पमय अवधि मे ही समाप्त हो जाना इसकी उपयोगिता स्पष्ट करता है । इस पुस्तक की विशिष्ट माग को देखते हुए यह तृतीय सस्करण सशोधित एव परिवद्धित कर प्रकाशित किया जा रहा है । अनेक बधुओ ने इस पुस्तक को पढकर पूछा- "आपने इतना ज्ञान कहा से प्राप्त किया ?" मेरा सहज उत्तर है "मेरे अनन्य श्रद्धा केन्द्र पू आचार्य प्रवर श्री १००८ श्री हस्ती मलजी म सा की कृपा व उनकी सद्प्रेरणा रूप प्रशादी-स्वाध्याय"।

सद् गुरू कृपा और स्वाध्याय-ये दो भव सागर मे बड़े सम्बल है।

संतचरण रज
जशकरण डागा,
डागा सदन,
सघपुरा, टोक-३०४ ००१
(राज)

अनुक्रमणिका

१. सम्यक् ज्ञान

समग्र लोकालोक प्रकाशक, अज्ञान व मोह अधकार का विनाशक और अनादि से भव समुद्र मे गोता लगा रहे जीव का परम फलदायक तथा ससार मे सर्वोत्तम अद्वितीय तत्व कोई है तो वह है 'ज्ञान'। शास्त्र मे कहा गया है –

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स ए सखएण, एगंत सोक्ख समुवेइ मोक्ख।।[१]

अर्थात् ज्ञान के समग्र प्रकाश, अज्ञान और मोह के त्याग से तथा राग–द्वेष के क्षय से एकान्त सुख रूप मोक्ष की उपलब्धि होती है। ज्ञान के समान कोई प्रकाशमान नही है। – 'नास्तिज्ञान समो दीप सर्वान्धकार नाशने।' ज्ञान परमोत्तम होने से 'गीता' मे भी कहा है– 'नाहिज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते।'[२]

ससार के सभी जीव सुख चाहते है, दु:ख कोई नही। दु:ख दूर कर सुख प्राप्ति के लिये ज्ञान से बढ कर कोई साधन नही है। सुख का मूल ज्ञान है, कहा भी है–

"ज्ञान समान न जान जगत मे, सुख को कारण।
यह परमामृत जन्म जरा मृत रोग निवारण।"[३]

---

१. उत्तरा ३२/२ २ गीता ४/३८
३. छह ढाला

नीति मे भी कहा है– नास्ति ज्ञानात् परम सुखम्।[1]

अर्थात् ज्ञान के सदृश अन्य कोई सुख नहीं है। ज्ञान के द्वारा जीव नर से नारायण हो जाता है। यह जीव की परम शक्ति है, जिसे विकसित कर आत्मा परमात्मा हो जाता है। इसलिये कहा गया है–'नाण नरस्स सारो।'[2]

अर्थ एव व्याख्या :

ज्ञान 'ज्ञ' धातु से बना है जिसका सामान्य अर्थ है जानना। ज्ञान के साथ 'सम्यक्' शब्द का अर्थ है सत्य, सही या भलिभांति। जैसे भास्करभानु द्रव्य अंधकार को दूर करता है। वैसे ही ज्ञान आत्मा मे रहे भाव अधकार को दूर करता है। इसलिये ज्ञान को दीपक, चन्द्र, सूर्य व नेत्रों के प्रकाश से भी उत्तम कहा गया है। सम्यक् ज्ञान की व्याख्या शास्त्र मे इस प्रकार की गयी है–जीव आदि पदार्थों मे जो प्रमाणो नयों निक्षेपो द्वारा यथार्थ रूप से निश्चय करावे उसे सम्यक् ज्ञान कहते है।[3] इसके विपरीत जो वस्तु तत्व का बोध विपरीत करावे, या अन्यथा करावे वह मिथ्याज्ञान या 'कुज्ञान (अज्ञान) है।

पर्यायवाची नाम – आत्म ज्ञान, भेद ज्ञान, तत्त्वार्थ ज्ञान, सम्यक् अवलोकन स्वरूप ज्ञान, स्व ज्ञान, यथार्थ ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, परम रहस्य, अलोकिक ज्ञान, देहातीत ज्ञान आदि।

ज्ञान के भेद :

ज्ञान के मुख्यत दो भेद है यथा–

(१) **लौकिक** –संसार सम्बन्धी ज्ञान। यह दो प्रकार का है।

---

१. चाणक्य नीति।

२. आचार्य कुन्दकुन्द कृत दर्शन पाहुड।

३ तत्वानुशासन ३६ व तत्वार्थ सूत्र ३७१–१ की टीक।

(अ) **जगत् मूलक**– भूगोल, खगोल, इतिहास, ज्योतिष, मशीनरी, ७२ कलाए आदि सम्बन्धी, जिसका आत्म विकास से कोई प्रयोजन नही और जिसका मूल उद्देश्य अर्थ और काम की सिद्धि मात्र होता है।

(ब) **आत्म मूलक** –संसार क्या है ? इसमे रहे जीव–अजीव क्या है ? स्वर्ग–नरक,विभिन्न जीव योनियो का स्वरूप कैसा व क्यों है? इत्यादि का ज्ञान जो आत्म विकास मे सहायक होता है।

वैसे लौकिक ज्ञान का भी अपना महत्त्व है। लौकिक ज्ञान से युक्त व्यक्ति विद्वान् हो सर्वत्र पुजाता है। उसका समय मूर्खों की अपेक्षा बडा अच्छा व्यतीत होता है और वह सुख से जीवन व्यतीत करता है। कहा है–

"काव्यशास्त्र विनोदेन,कालोगच्छतिधीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां, निद्रया कलहेन वा ।।

अर्थात् विद्वानो का समय, काव्य शास्त्रो के विनोद मे निकलता है, तो मूर्खों का समय दुर्व्यसनो में, निद्रा मे या कलह मे पूरा होता है। समदृष्टि जीव लौकिक ज्ञान का भी सदुपयोग कर, स्व–पर का हित उससे साध लेता है। लौकिक ज्ञान से विद्वान् तो बना जा सकता है, पर पडित नही। पड़ित होने हेतु लोकोत्तर ज्ञान की जानकारी एव तदनुकूल साधना व आचरण आवश्यक होते है।

(२) **लोकोत्तर**–आत्मा सम्बन्धी ज्ञान। यह आत्मकल्याण हेतु आवश्यक है। कहा है–

'आत्म ज्ञान के बिना विश्व का अन्य ज्ञान सब है बेकार ।
आत्म ज्योति को बिना जगाये, कौन हो सका भव से पार'[1]।।

वस्तुत आत्मार्थी के लिए आत्म ज्ञान के बिना पूर्वो का ज्ञान सीख लेना भी कोई महत्त्व नही रखता । इस विषय मे नाविक और

१. उपाध्याय कवि अमरचन्दजी म. सा.

प्रोफेसर का कथन बडा रोचक है।

एक बार एक प्रोफेसर साहब को मार्ग मे नदी आ जाने से नाव मे बैठना पडा। उन्होने समय गुजारने तथा अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने हेतु नाविक से पूछा–' क्या तुझे अग्रेजी आती है ? 'उसने कहा – श्रीमान् मै तो बेपढा लिखा हूँ। 'उन्होने यह कहते हुए कि तेरी चौथाई जिन्दगी यो ही गई, फिर पूछा ' क्या तुझे ज्योतिष ज्ञान आता है ?' उसने फिर कहा 'नही श्रीमान् !' प्रोफेसर ने पुन नया प्रश्न किया – 'क्या तुझे खगोल–आकाश के ग्रहो की विद्या आती है ? 'उसने पुन उत्तर दिया –'नही श्रीमान् !' इस पर प्रोफेसर साहब हॅसकर बोलने लगे 'तब तेरी बारह आने जिन्दगी वैसे ही गई।' इतने मे नदी मे तेजी से पानी के बढते आवेग को देख नाविक ने प्रोफेसर साहब से पूछा– 'श्रीमान् आपको तैरना भी आता होगा?' प्रोफेसर बोले –'नही भाई ! तैरना तो नही सीखा।' तब नाविक बोला 'श्रीमान् ! मेरी तो बारह आने जिन्दगी ही गई पर आपकी पूरी जिन्दगी ही खतरे मे है कारण नदी मे भयकर बाढ आ गई है, नाव तो अब डूबने वाली है।' थोडे ही समय मे नाव डूब गई, और प्रोफेसर साहब की जिन्दगी भी समाप्त हो गई। ससार समुद्र मे भी जिन्हे उससे तिरने रूप आत्मज्ञान की कला नही आई, वे सभी प्राणी मानव भव–रूपी नौका प्राप्त करके भी डूब जाते है। इसीलिए कहा है–

" कला बहत्तर पुरुष की, ज्या मे दो सरदार ।
एक जीव की जीविका, एक आत्म उद्धार ।।

अतएव सभी आत्मार्थियो के लिए आत्मज्ञान की लोकोत्तर विद्या को अवश्य जानना और उसे आत्म कल्याण करने की विधि को भलीभॉति हृदयंगम करना चाहिए। लोकोत्तर ज्ञान भी दो प्रकार का है–

(अ) **मिथ्या लोकोत्तर** – जो लोकोत्तर मोक्ष मार्ग को विपरीत एव अन्यथा रूप मे बताता हो । इसके भी दो भेद है–

(i) **मूलत. सर्वथा मिथ्या**–जिसमे प्ररूपणा, स्पर्शना सभी मिथ्या जैसे–चार्वाक मत, जिसमे कहा है–

"यावत् जीवेत सुख जीवेत, ऋण कृत्वा घृत पीवेत् ।
भस्मी भूतस्य देहस्य, पुनर्जन्म कुतः ।। "

अर्थात् जब तक जीओ सुख से जीओ, उधार करके भी घृत पीओ । कारण पुनर्जन्म या स्वर्ग–नरक कुछ नही है, यह शरीर भस्म होकर सब नष्ट हो जाता है।

(ii) **देशत आशिक मिथ्या**–जहॉ प्ररूपणा सम्यक् पर स्पर्शना मिथ्या हो अथवा जहा दोनो ही कुछ सम्यक् और कुछ मिथ्या हो – मिश्रित हो। जैसे हिसा मे पाप मानना परन्तु धर्म के या ईश्वर के नाम बलि आदि होने वाली हिसा मे धर्म मानना । जीव , अजीव आदि तत्त्वो को मानना परन्तु उन्हे यथास्वरूप न मानकर विपरीत या कम अधिक मानना । अथवा स्वार्थवश सद्–असद् प्ररूपणा करना ।

लोकोत्तर मिथ्या ज्ञानी भी तीन प्रकार के होते है यथा– 'तिविहा मूढा' पणत्ता, तजहा – णाण मूढा, दसण मूढा चरित्त मूढा।[1] अर्थात् तीन प्रकार के मूढ कहे है – १ ज्ञान मूढ (आत्म ज्ञान रहित) २. दर्शन मूढ (सम्यक् दर्शन रहित) ३ चारित्र मूढ (सम्यक् चारित्र रहित)। जो इन तीनो से सहित है , उसका ज्ञान मूलत सर्वथा मिथ्या है और जो इनमे से एक या दो से रहित है उसका भी देशत आंशिक मिथ्या है। समदृष्टि भी यदि चरित्र पालना में छल करता है, तो उसका भी ज्ञान अपेक्षा से आशिक मिथ्या है।

(ब) **सम्यक् लोकोत्तर**–यह वस्तु तत्व को नय, निक्षेपो एव प्रमाणो से यथातथ्य स्पष्ट करता है। इसके भी दो मूल भेद है यथा–

---

१. ठाणाग सूत्र ३/४/२०३

(i) परोक्ष ज्ञान–जो मोक्ष मार्ग में सहायक तत्वों की व्यावहारि जानकारी प्रदान करे । इसके भी दो भेद है–मति ज्ञान और श्रुति ज्ञा इन्द्रियो और मन की संहायता से रूपी–अरूपी पदार्थों का जो आ किन्तु सम्यक् ज्ञान होता है । वह मतिज्ञान है। इसके दो भेद हैं– श्रु निश्रित (शास्त्र व उसके अर्थ में होने वाला) तथा अश्रुत निश्रित (बि शास्त्र के संस्पर्श से मात्र क्षयोपशम से होने वाला) अश्रुत निश्रित के च भेद है– (१) औत्पत्तिकी (हाजिरी जवाबी), (२) वैनयिकी (गुरु आदि सेवा से हो), (३) कर्मजा (कार्य करने से बुद्धि उत्पन्न हो), (४) पारिणामि (सुदीर्घकाल के अनुभव से हो)। श्रुत मिश्रित के भी चार भेद हैं – (अवग्रह (२) ईहा (३) अवाय व (४) धारणा।

मतिज्ञान के अवान्तर भेद ३३६ है।

मतिज्ञान दो प्रकार का है– अर्थावग्रह व व्यजनावग्रह

(१) **अर्थावग्रह**– पाच इन्द्रियों व एक मन ये ६ को अवग्र ईहा, अवाय व धारणा इन चार से गुणित करने पर २४ भेद होते इनमे चार प्राप्य कारी ईन्द्रियो के (मन व चक्षु को छोड कारण यह रा के रहे पुद्‌गल ग्रहण नही करते) चार व्यञ्जनावग्रह जोडने पर २८ भे होते हैं। ये क्षयोपशम विपय की विविधता से वारह प्रकार के होते है

(१) वहुग्राही (२) अल्पग्राही (३) वहुविधग्राही (४) एकविधग्राही (५) क्षिप्रग्रा (६) अक्षिप्रग्राही (७) निश्चितग्राही (८) अनिश्चितग्राही (६) सादिग्धग्रा (१०) असदिग्धग्राही (११) ध्रुवग्राही (१२) अध्रुवग्राही। इन वारह से अट्‌ठाई को गुणित करने पर ३३६ भेद होते हे।

इनमे मतिज्ञान के अवान्तर भेद अर्थावग्रह के २८८ व व्यञ्जनावग्र के ४८ यो कुल ३३६ होते है। । इनमे अश्रुत निश्रित मतिज्ञान के पूर्वो चार भेद जोडने से कुल ३४० भेद होते हं।

शास्त्रादि श्रवण करने से जो ज्ञान होता है उसे श्रुत ज्ञा

कहते है। श्रुतज्ञान सदा मतिपूर्वक होता है। अन्य ज्ञान तो सभी वस्तु स्वरूप को जानते है किन्तु कथन की शक्ति मात्र श्रुतज्ञान मे है, श्रुतज्ञान के मुख्यत १४ भेद होते है।

(१) अक्षर श्रुत (२) अनक्षर श्रुत (संकेत आदि) (३) संज्ञी श्रुत (४) असज्ञी श्रुत (५) सम्यग् श्रुत (६) मिथ्या श्रुत (७) अनादि श्रुत (यह मात्र अभव्यो व अनादि मिथ्या दृष्टियो मे ही पाया जाता है) (८) सादि श्रुत (सम्यग् श्रुत की आदि में) (९) अपर्यवसित श्रुत (यह मात्र अभव्य को होता है) (१०) सपर्यवसित श्रुत (मिथ्यात्व से या केवल ज्ञान से जिस श्रुत का अवसान हो) (११) गमिक (दृष्टि वाद के रूप में) (१२) आगमिक (दृष्टि वाद के अतिरिक्त श्रुत) (१३) अग प्रविष्ट और (१४) अंग बाह्य श्रुत।

मति श्रुति ज्ञान मे भेद[१]:–

(१) मतिज्ञान मे शब्दोल्लेख नही होता किन्तु श्रुत ज्ञान मे होता है।
(२) मतिज्ञान की अपेक्षा श्रुत ज्ञान का विषय अधिक है।
(३) ज्ञान का प्राथमिक अपरिपक्व अश मतिज्ञान है और उत्तरवर्ती परिपक्व या स्पष्ट भाग श्रुत ज्ञान है।
(४) जो भाषा में उतारा जा सके वह श्रुत, और जो भाषा मे उतारने के योग्य परिपक्वता को प्राप्त न हुआ हो, वह मतिज्ञान है।
(५) श्रुत ज्ञान खीर है, तो मतिज्ञान दूध है।

(ii) **प्रत्यक्ष ज्ञान**– इसके मुख्यत दो भेद है–

(१) **विकल प्रत्यक्ष**– अवधि और मन पर्यय। ये दोनो विकल प्रत्यक्ष है। अवधि ज्ञान के द्वारा सभी रूपी पदार्थों को देखा जाता है। अवधि ज्ञान के दो भेद गुण प्रत्यय (मनुष्यतिर्यच अपेक्षा) व भव प्रत्यय (देवनरक अपेक्षा) है, व इसके ६ भेद भी है– अनुगामी, अनानुगामी,

---

१. स्थानाग सूत्र

वर्धमान, हीयमान, प्रतिपाति व अप्रतिपाति।[1]

मनःपर्यव ज्ञान के द्वारा सभी सज्ञी (मन वाले) प्राणियो की मनोवर्गणा जानता-देखता है। यह भी दो प्रकार का है- ऋजुमति व विपुलमति

(२) **सकल प्रत्यक्ष**- इसमें केवलज्ञान आता है जिसका कोई भेद नही है। जो ज्ञान त्रिकाल के सभी द्रव्यों और सभी पर्यायों को हस्तामलकवत् (हाथ में रखे आंवले की तरह) एक साथ सम्पूर्ण रूप से जानता देखता है उसे केवल ज्ञान कहते है। यह सभी ज्ञानों से उत्तम व निर्मलतम ज्ञान है। केवल के अर्थ है- (१) शुद्ध, (२) सम्पूर्ण, (३) साधारण, (४) अनंत और (५) असहाय (मन इन्द्रिय की अपेक्षा रहित)। यह ज्ञान उत्पन्न होकर कभी नष्ट नही होता है।

निश्चयिक लोकोत्तर ज्ञान-व्यावहारिक लोकोत्तर मतिश्रुति ज्ञान के माध्यम से सम्यक् श्रद्धा युक्त चिंतन मनन कर, सारभूत आत्मज्ञान को आत्मसात कर लेना, निश्चयिक लोकोत्तर ज्ञान है। इसकी उपलब्धि पर जीव, निश्चय से सम्यग्ज्ञानी, सम्यक् दृष्टि हो जाता है। इसी कारण इसका बडा महत्व है । कहा है- विज्जानिच्छयसारां।[2] अर्थात् ज्ञान का सार निश्चय की उपलब्धि है। अभव्य जीव व्यावहारिक ज्ञान तो खूब (नव वर्ष तक का) पढ लेता है। किन्तु निश्चय ज्ञान की उपलब्धि अनंतानुबंधी की ग्रंथि भेद व दर्शन मोहनीय के दूर न कर सकने के कारण , नही कर पाता है। अत उसका समग्र ज्ञान व पुरुषार्थ संसार भ्रमण का हेतु होता है। वह मोक्ष मार्ग मे बढने हेतु पहली सीढी (प्रथम गुण स्थान) से आगे ही नहीं बढ पाता। इस निश्चयिक ज्ञान की उपलब्धि हेतु, निर्मल क्षयोपशम आवश्यक है। इस हेतु कम से कम अनंतानुबंधी-कषाय-चतुष्क, क्रोध, मान, माया, लोभ व दर्शनत्रिक (मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय व समकित मोहनीय) का त्याग आवश्यक है। क्षयोपशम अपेक्षा से, अल्प ज्ञानी भी इसे प्राप्त कर सकता है, तो दूसरी

---

१. कर्मग्रंथ भा १ गा ८

२ तत्त्वार्थ सूत्र २/२०/

तरफ श्रुत के महाज्ञानी विद्वान् भी इससे वचित रह सकते है। इस ज्ञान को उपलब्ध होने वाला जीव, निश्चय से भेदज्ञानी, सम्यक् ज्ञानी व आत्मज्ञानी होता है। उसका स्वय का चितन मनन बडा निर्मल, निष्पक्ष और सत्य पर आधारित होता है। उसकी मान्यता, 'मेरा सो सत्य नही, वरन् सत्य सो मेरा है' ऐसी हो जाती है। वह सत्यान्वेषी होता है। कदाग्रह व मिथ्याग्रह रहित होता है। जब भी उसे अपनी कोई भूल ध्यान मे आती है, तो वह उसके लिए क्षमायाचना कर उसे ठीक करने को तत्पर रहता है। प्रत्येक आत्मार्थी को ऐसी प्रवृत्ति बनानी चाहिए।

कहा भी है— जो भूल नहीं करे वह अरिहंत, जो भूल करे वह मानव, जो भूलकर सुधारे वह साधक, और जो भूल को छिपावे वह अज्ञानी होता है।

निश्चय आत्म-ज्ञानी आत्मा से, आत्मा का, आत्मा के लिए गूढ चितन-मनन करता है। जैसे श्रीमद् राजचन्द्र ने चितन करते हुए लिखा है—

"हू कौन छॅू, क्या थी थयो, क्या छै स्वरूप म्हारो खरो ?
कौन सबध बरगणा छै, राखणो के परिहरू ?
एवो विचार विवेक पूर्वक, शान्त भाव जे करे।
ते सर्व आत्म ज्ञानना, सिद्धान्त-तत्त्व अनुभवे।।"[1]

सच्चे आत्म ज्ञान को उपलब्ध प्राणी पर मे रही कर्तृत्व बुद्धि को भी छोड देता है। उसकी एक अटूट मान्यता व धारणा हो जाती है—

"कर्म करे सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
जो कर्ता जाने नही सोही, जाने सो कर्ता नही होई।।"[2]

इस प्रकार के चितन एव धारणा से उसकी पर में आसक्ति भी

१. आत्म सिद्धि २. समय सार

कम होती जाती है, और 'ज्ञाता दृष्टा' की अनुभूति उसमे आत्मा से हो लगती है। किन्तु इस भूमिका की उपलब्धि, अति कठिन है। कथ जितना सरल है, कथन की जीवन मे उपलब्धि उतनी ही कठिन है

इस प्रसंग में एक रोचक दृष्टान्त यहाँ प्रस्तुत है। एक बार ए सत के यहाँ कुछ व्यक्ति आये और कहने लगे – परमात्मा नही है, ध धोखा–धडी है। संत उनकी बात सुनकर हँसने लगे तो उन्होने पूछा आप हँसते क्यो है ? समाधान देवे । संत बोले –क्या आप स्वयं क जानते है ? तब वे एक दूसरे का मुँह देखने लगे । संत ने कहा – ज आप स्वय को ही नही जानते परमात्मा होने ना होने का निर्णय आ कैसे दे सकते है ? इस पर उनमे से एक व्यक्ति ने संत को निरुत्त करने हेतु उत्साहपूर्वक पूछा– आप ही बतावें दुनिया मे सबसे बडी वस् क्या है ? संत ने सहज भाव से उत्तर दिया–आकाश ! क्योकि जो भी है, सब आकाश मे है, और आकाश किसी मे नही ।' संत को निरुत्त करने हेतु दूसरे व्यक्ति ने पूछा – दुनिया में श्रेष्ठतम वस्तु क्या है ? सं ने उसी क्षण चितन कर उत्तर दिया 'शील है। कारण शील पर सब कु न्यौछावर किया जा सकता है, किन्तु शील को किसी के लिए नह खोया जा सकता।' इस पर तीसरे व्यक्ति ने सत से पूछ लिया– महात्मन् ! सब से गतिशील क्या ? संत ने तत्क्षण कहा –'विचार' । त चौथे व्यक्ति ने पूछा– सबसे कठिन क्या ? महात्मा ने उत्तर दिया आत्म ज्ञान। कारण स्वय को जानना सर्वाधिक कठिन है। सभी व्यक्ति महात्मा के गहन ज्ञान से प्रभावित हो उनके आगे नत मस्तक हो गये

ज्ञान के पांच प्रकार [१]–

(१) मति ज्ञान

(२) श्रुति ज्ञान

---

१. नदी सूत्र

(३) अवधि ज्ञान

(४) मन पर्यय ज्ञान

(५) केवल ज्ञान

म्यक् ज्ञान के लक्षण।

इसके चार लक्षण है–

(१) गुणी के दर्शन कर प्रमोद भाव रखे।

(२) अवगुणी के दर्शन कर सम भाव, मध्यस्थ भाव रखे।

(३) दुखी देखकर करुणा भाव रखे।

(४) सभी जीवो पर मैत्री भाव रखे।

सम्यक्ज्ञान प्राणी को परमुखी से स्वमुखी बना देता है, जिससे वह सभी परिस्थितियो मे, सहज सुख का अनुभव करता है, विषमता मे भी समता और आधिव्याधि मे भी, समाधि भाव रखता है। इस बारे मे कविवर सुन्दरदासजी ने बडा ही हृदय प्रभावी पद कहा है–

"जाहि को विवेक भयो, वाहि को कुशल भयो।
जाहि और जावे वाको, वाहि ओर सुख है ।।
भले कोऊ निन्दा करे, भले कौऊ प्रशसा करे ।
वो तो देखे आरसी मे , अपनो ही मुख है ।
जैसे कोई पाव मे , पेजार चढाय लेई ।
वाको तो नही, कॉटा कोकरा को दु ख है ।।
देह को सम्बन्ध सब, मिथ्या नाशवान जान ।
'सुन्दर' कहे एक आत्मा ही सुख है ।।"

जिस मार्ग मे अज्ञानी चलते है उसी मार्ग पर ज्ञानी चलते है। किन्तु अज्ञानी अपनी आत्मा को बाध लेता है और तत्त्व ज्ञानी बध रहित

हो जाता है । यह ज्ञान का महात्म्य है।[1] इसी कारण से सम्यग्ज्ञ पुरुष का कथन, श्रवण व समझ निराली होती है। कहा है–

"श्रवण नयन मुख नासिका, सबहि के एक ठौर ।
कहबो, सुणबो, देखबों, ज्ञानी को कुछ और ।।"

ज्ञानी, श्रवण का मनन और वाचन का पाचन कर, सार वस्तु को प्राप्त कर लेते है, जबकि अज्ञानी का श्रवण और वाचन, मात्र चित्तरंजन व समय गुजारने हेतु होता है। **तत्त्व का मात्र श्रवण या वाचन पानी है, उस पर चिंतन से वह दूध हो जाता है और उसे हृदयंगम कर आत्मसात कर लेने से वह मक्खन बन जाता है** । तत्त्व रूप कोरे पानी को दूध और मक्खन बना उपयोग करने की कला सम्यग्ज्ञानी मे ही होती है ।

सम्यग्ज्ञान वृद्धि के हेतु :

(१) स्वाध्याय – पराध्याय को तज निज (आत्मा) का चिंतन पाठन सम्यग्ज्ञान वृद्धि का मुख्य हेतु है। कारण स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्मक्षय होते है (सज्झाएण नाणावरणिज्ज कम्म खवई)[2] स्वाध्याय का महत्व इस दृष्टान्त से सुस्पष्ट होता है। एक पिता ने अपने पुत्र को पराध्याय से हटाकर स्वाध्याय में जोडने हेतु, एक कागज पर जिस पर एक तरफ संसार का चित्र था, तो दूसरी तरफ मनुष्य का, उसके टुकडे–टुकडे कर उसे जोडने को कहा । जब तक वह संसार के चित्र की तरफ से जोडने का प्रयास करता रहा, उसे न जोड सका किन्तु जैसे ही उसने मनुष्य के चित्र की तरफ से जोडना शुरु किया, तत्क्षण जुड गया । पिता ने पुत्र को समझाया, बस सफलता की यही कुञ्जी है। संसार 'पर' है। उसका जीवन भर अध्ययन करते रहोगे तो भी अपूर्ण

---

१. ज्ञानार्णव सप्तम प्रकरण। २. उत्तरा २९/१८

होगे, अत 'पर' से हटकर 'स्व' का अध्ययन करो। 'स्व' का अध्ययन भी विवेकपूर्वक हो। कारण जगत् मे अनेक धर्म हैं, उनके शास्त्र भी अनेक है, किन्तु जो हमारे लिए सारभूत और परम हितकारी है, उसी का स्वाध्याय उचित है। जैसे माल खरीदते समय परीक्षा कर श्रेष्ठ माल लिया जाता है। गुड–गोबर को समान नहीं माना जाता, या नमक मिश्री या गाय दूध, आक समान नजर आते हुए भी समान नही होते, वैसे ही वीतराग श्रुत और अन्य श्रुत मे, अन्तर समझ 'वीतराग श्रुत' का ही स्वाध्याय उत्तम है। इस विषय मे कवि का यह कथन मननीय है–

"कैसे करी केतकी, कणेर एक कह्यो जाय।
आक दूध–गाय–दूध, अन्तर घणेरो है ।।
पक्ष छोड पारखी, निहार नेक निश्चय करि।
जैन बैन और बैन अन्तर घणेरो है।।"

इसी पर एक दृष्टान्त है। चार श्रेष्ठी पुत्र धन कमाने हेतु विदेश जाते हैं। मार्ग मे लोहे की खान मिलती हैं। चारो ने अपनी–अपनी शक्ति अनुसार लोहा ले लिया। कुछ आगे जाने पर चादी की खान मिली तो एक को छोड तीनो ने लोहे को छोड, चादी ले ली। कुछ आगे जाने पर सोने की खान मिली, तो उस एक को छोड तीनो ने चादी छोड सोने को ले लिया। इसके बाद हीरे की खान मिली। तो पूर्ववत् तीनो ने सोना छोड हीरे ले लिए, पर चौथे ने लोहे को ही पकडे रखा। चारो नगर में लौटे तो तीनो तो हीरो के कारण बडे समृद्ध हो गये, पर चौथा व्यक्ति जो मात्र लोहे को ही भर कर लौटा था, दु खी हो गया। इसी प्रकार जिनवाणी–वीतराग श्रुत–हीरे के समान है, और अन्य मिथ्या श्रुत कंकड–पत्थर या लोहावत् है। आत्मार्थियो को विवेक पूर्वक सम्यक् श्रुत–असम्यक् श्रुत का भेद समझ परम हितैषी सम्यक् श्रुत का स्वाध्याय करना चाहिए। कहा भी है 'जयणा धम्मस्स जयणी' अर्थात् यतना धर्म की जननी है।

(२) सत्सग– सद्ज्ञान को बढाने का दूसरा मुख्य व उत्त साधन सत्संग है। निरन्तर या पुन पुन सदगुणियो के सग से आत्मा रही अनन्त ज्ञान की ज्योति प्रकट हो जाती है। म० कबीर, सूरदा आदि बेपढे लिखे होकर भी इसी माध्यम से ज्ञान की दिव्य ज्योति से उपलब्ध हुये थे। एक कवि ने कहा–

"ज्ञान बढे गुणवान की सगत, ध्यान बढे तपस्वी सग कीने
मोह बढे परिवार की संगत, लोभ बढे धन मे चित्त दीने।
क्रोध बढे नर मूढ की सगत, काम बढे त्रिया चित्त दीने
बुद्धि विवेक विचार बढे कवि दीन सुसज्जन संगत कीने ।।

(३) **विषय कषाय व प्रमाद को दूर करें**–शास्त्र मे कहा है–

"पचेहि ठाणेहि जे सिक्खा न लब्भई ।
थभा कोहा पमाएण, रोगेण आलस्सेणया ।।"[1]

अर्थात् पांच कारणो से ज्ञान प्राप्त नही होता जो इस प्रकार है :–

(१) **थंभा** (अभिमान) – इससे विधिवत् ज्ञान आराधन व उराव पाचन नही होता। कहा है– अधजल गगरी छलकत जाय। इस प गणित के महान् विशेषज्ञ श्रीधराचार्य का पौराणिक कथानक अवलोकनी है। उन्हे अभिमान हो गया था कि पूरे भारत मे उनके समान गणितज्ञ नहीं है। यह वात उन्होने अपनी प्रशस्ति मे लिखी। इस पर सरस्वती देवी ने वृद्धा का रूप बना, उसके पास आकर पूछा – बेटा एक और दो कितने होते हैं ? श्रीधराचार्य ने इसके उत्तर क्रमश तीन, दो, बारह आदि वताये पर वृद्धा ने सभी उत्तर गलत बताये। तव झुंझलाकर वृद्धा से पूछने पर वृद्धा ने कहा – एक ओर दो ' एकवीस २१ होते है कारण 'अंकानां वामतोगति।' श्रीधराचार्य का गर्व गलित हो गया। सरस्वती

१ उत्तरा० ११ गा० ३

देवी ने उसे समझाया, आगे कभी ज्ञान का गर्व मत करना।

(२) **क्रोध**–शास्त्र मे कहा है– 'कोह असच्चं कुविज्जा' अर्थात् क्रोध को असत्य (त्याग) करो । क्रोध की भयकरता के लिए कवि ने कहा है –

"गुस्से से तन निर्बल होता, लोही विषमय हो जाता।
तेज चला जाता ऑखो का, ज्ञान रहित मन बन जाता।।
अक्ल न जाने कहॉ जाती है ज्ञानी बने गवार जी।
सुनलो बन्धु कान लगाकर, वाणी तारणहार की।।"

(३) **प्रमाद**– धर्म मे अरूचि रखना, शक्ति होते हुए भी उसका उपयोग धर्म मे न करना प्रमाद है । इसके पाच भेद है– मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा। ये सभी ज्ञान मे बाधक है ।

(४) **रोग**– 'धर्म, अर्थ, काम, मोक्षाणा, आरोग्य मूल कारण।' इसके अनुसार सभी क्षेत्रो मे सफलता हेतु आरोग्यता होना आवश्यक है। रोग के कारण चाहते हुए भी ज्ञानाराधना नही हो सकती ।

(५) **आलस्य**– 'आलस्यादि मनुष्याणा शरीरस्थो महारिपु' अर्थात् आलस्य शरीर मे रहा शत्रु है । ज्ञानार्जन हेतु इसका त्याग भी अति आवश्यक है ।

(६) **ज्ञान और ज्ञानी की विराधना न करे** – ज्ञान और ज्ञानी की विराधना से ज्ञानावरणीय कर्म बधते है अत निम्न छः प्रकार से उनकी विराधना न करे ।

(i) ज्ञान और ज्ञानी के प्रति द्वेष से ।
(ii) ज्ञान और ज्ञानी की निन्दा करने से ।
(iii) ज्ञान और ज्ञानी का अवर्णवाद करने से ।

(iv) ज्ञान और ज्ञानी की आशातना करने से।

(v) ज्ञान और ज्ञानी से विषमवाद करने से।

(vi) ज्ञान और ज्ञानी के अभ्यास में अन्तराय डालने से।

ज्ञान वृद्धि के बोल—(१) कम खाना, (२) कम बोलना, (३) कम नींद लेना (४) कपट रहित तप करना, (५) ज्ञानियों की संगत करना (६) विनय करना, (७) उद्यम करना, (८) ज्ञानी से ज्ञान चर्चा करना, (९) ज्ञानी के पास पढना, (१०) संसार की वस्तुओं को असार समझ सार वस्तु ज्ञान को ही समझना व (११) पांच इन्द्रियों को वश में करना।

ज्ञान का फल—ज्ञान का मूल फल विरति है। कहा है- ज्ञानस्य फलं विरति। ज्ञान की उपलब्धि से जीव संसार रूप अटवी में नही भटकता है। शास्त्र मे कहा है—

"जहा सुई ससुत्ता पडिया वि ण विणस्सइ।
तहा जीवे ससुत्ते, ससारेवि ण विणस्सई ।।"[1]

अर्थात् जिस प्रकार धागे मे पिरोई सूई गिरने पर, गुम नही होती वैसे ही श्रुत ज्ञानी जीव ससार में भटकता नही है।

ज्ञान आत्मा के अनंत गुणो का प्राथमिक और मुख्य गुण है। इसकी उपलब्धि पर अन्य सभी गुण यहाँ तक की मोक्ष की उपलब्धि भी हो जाती है। शास्त्र मे कहा है—

"सवणे णाणे विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणण्हये तवे चेव वोदाणे, आकिरिया सिद्धि।।"[2]

अर्थात् ज्ञान का फल विज्ञान, विज्ञान का प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान का संयम, संयम का अनाश्रव, अनाश्रव का तप, तप से पूर्व कर्मों का

---

१. उत्तरा० २९/५९ २. भगवती-सूत्र २/५

नाश, कर्म के नाश से क्रिया का अभाव और निष्क्रियता से अन्त मे सिद्धि की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार ज्ञान का फल महान है और ज्ञान ही मोक्ष रूपी मंजिल मे प्रवेश कराने का मुख्य हेतु है।

ज्ञान का महत्व :

(१) **मुक्ति का मूल** शास्त्र में कहा है — 'पढम नाण तओ दया।'[1] अर्थात् सभी क्रियाओं में प्रथम स्थान ज्ञान का है। बिना ज्ञान की सारी क्रिया अंधी है। कारण 'णाणेण जाणइ भावे।'[2] अर्थात् ज्ञान से ही पदार्थो के स्वरूप को जाना जाता है। ज्ञान के माहात्म्य को बताते हुए कवि कहता है—

"न ज्ञान तुल्य किल कल्पवृक्षो, न ज्ञान तुल्य किल कामधेनु।
न ज्ञान तुल्य किल कामकुंभ, ज्ञानेन, चिंतामणिरप्य तुल्य।।

अर्थात्, कल्पवृक्ष, कामधेनु, कुभ कलश (रस कुभिका) और चितामणि रत्न भी ज्ञान की तुलना में नगण्य हैं। उक्त वस्तुओ से सासारिक लाभ तो मिलता है, किन्तु मुक्ति रूपी लाभ तो ज्ञान से ही मिलता है। मोक्ष प्राप्ति के चार कारण ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप मे ज्ञान प्रथम और प्रमुख कारण है। जिनेन्द्र देव ने शील की तुलना मे श्रुत को अधिक महत्व दिया है, कारण श्रुत रहित शील पालक को आशिक आराधक और शील रहित श्रुत ज्ञान को आशिक विराधक बताया गया है।[3]

(१) **ज्ञान सुख की खान है**— कहा है—

"तन रोगो की खान है, धन भोगो की खान।
ज्ञान सुखो की खान है, दु:ख खान अज्ञान।।"

---

१. दशवैकाविक ४/१०। २. उत्तरा० २८/२५।
३. भगवती सूत्र।

ज्ञानी कहते है जितना प्रमाण ज्ञान उतना प्रमाण सुख तः जितना प्रमाण अज्ञान उतना प्रमाण दु ख जाने।

ज्ञानी सुख–दु ख को कर्मों का खेल मानकर आसक्त नही होते जिससे वे दु ख मे दु खी और सुख मे गर्वित न हो समभाव मे रहते हैं। कहा है–

"सुख दुःख दोनो वस्तु है, ज्ञानी के घट माहि।
गिरि, सर दीसे मुकुर मे, भार भीजता नांहि।।"

जैसे दर्पण मे पर्वत व तालाब दोनो झलकते है, फिर भी वह न तो भार का अनुभव करता है और न तनिक मात्र भी भीगता है। ऐसे ही ज्ञानी सुख–दु ख मे रहकर भी उससे अपने को भिन्न रखते हैं। मरणान्तिक कष्टो मे भी वे दुखी नही होते । कारण आसक्ति न होने से वे मरने से पूर्व ही त्याग भाव से समाधि को प्राप्त कर लेते हैं। यह ज्ञानी की विशेषता है। कहा है–

"ज्ञानी देकर के मरता है, अज्ञानी मर कर देता है।
जरा फरक से मरते है ज्ञानी और अज्ञानी ।।"

आत्मज्ञान के अभाव मे जीव देव गति मे इन्द्र भी बना पर दु खी रहा । कहा है[1]–

"*मुनिव्रत धार अनत बार, ग्रैवेयक उपजायो ।*
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो ।।"

(३) **उत्कृष्ट भौतिक व आत्मिक सुख का प्रदाता**– ज्ञान के माध्यम से जीव के विशिष्ट पुण्य का (पुण्यानुबधी पुण्य का) बंध होता है जो सुखे–सुखे मोक्ष तक की मजिल पार कराने मे परम्परा से हेतु होता है। नए–नए ज्ञान का अभ्यास करने से तीर्थकर गोत्र का वंधन भी संभव

---

१ छहढाला

है।[१] जो पुण्य अज्ञानी जीवन भर गौतम स्वामी जैसी दुष्कर क्रिया करके संचित नही कर सकते, वो ज्ञानी सहज ही कुछ समय की साधना से संचित कर लेते है। इसी तरह जितना पाप अज्ञानी अनत भवो मे क्षय नही कर सकता, ज्ञानी एक ही भव मे क्षय कर देता है। श्री प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ध्यान मे सातवी नरक के दलिक एकत्रित कर लेते है, पर ज्योहि ज्ञान मे चितन करते है, सब कर्म दलिक क्षयकर उसी समय मोक्ष चले जाते है। दूसरी ओर तदुल मत्स्य भी किसी को मारता नही, ध्यान मे ही सातवी नरक के दलिक इकट्ठे कर ज्ञानाभाव मे मरकर, सातवीं नरक मे चला जाता है। यह ज्ञान की बडी विशेषता है। पाप के क्षय और पुण्य के सचय से ज्ञानी भौतिक और आत्मिक दोनो सम्पदाओ को प्राप्त कर, उत्कृष्ट सुख को उपलब्ध होता है।

(४) **ज्ञान से दुर्गुण भी दब जाते है–** जैसे सूर्य के उदित होने पर तारागण प्रभावहीन हो लुप्त हो जाते है वैसे ही ज्ञान शक्ति के आगे दुर्गुण प्रभावहीन और विलुप्त हो जाते है। एक बार यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात के पास एक ज्योतिषी पहुचा। ज्योतिषी ने सुकरात की नथनी की रचना देख कहा–"इस व्यक्ति में तो क्रोध कूट–कूट कर भरा है।" सुकरात के शिष्य यह सुन आवेश मे आ गये। परन्तु ज्योतिषी ने निडरता से कहा–"इसके मस्तक की रचना ऐसी है कि यह एक लालची व्यक्ति है और इसकी ठुड्डी बताती है कि यह बिल्कुल सनकी है। इसके होठ और दॉतो से स्पष्ट होता है, कि यह देशद्रोह करने को लालायित रहता है।" सुकरात ने यह सब सुनकर ज्योतिषी को अच्छा पुरस्कार दे विदा किया। किन्तु शिष्यगण आश्चर्य मे पड गये । तब सुकरात ने शिष्यो से कहा –" सत्य को छिपाना व्यर्थ है। ज्योतिषी ने जितने दुर्गुण मेरे मे बताये वे मुझमे विद्यमान है, मै उन्हे स्वीकारता हूँ। किन्तु ज्योतिषी जी एक भूल कर गये। उन्होने मेरे विवेक पर ध्यान नही

---

१ ज्ञाता सूत्र अ० ८

दिया। मै अपने सभी दुर्गुणो को विवेक की शक्ति से नियन्त्रित कि
रखता हू।

ज्ञान की महान् शक्ति का आभास इस उदाहरण से स्पष्ट है।

(५) **सर्वत्र पूजनीय बनाता है–** ज्ञानी जहा भी चला जावे वह
पूजा व सत्कार प्राप्त करता है। कहा है– स्वदेशी पूज्यते राजा, विद्वान
सर्वत्र पूज्यते। ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति कही भी चला जावे, सर्वत्र
उसका आदर व यशोगान होता है, जिससे ज्ञान को दसवी निधि कहा
है।

(६) **ज्ञान–धन कभी नष्ट नही होता** – ज्ञान को न चोर चुरा
सकते है न कोई लूट सकता है। वरन् यह खर्च करने से बढता है। कहा
है –

सरस्वती के भण्डार की, बडी अपूरब बात।
ज्यों खर्चे त्यो–त्यो बढे, बिन खर्चे घटि जात।।

(७) **मन नियंत्रित करने का सर्वोत्तम साधन** –चंचल मन,
जिसे वश में करना अति कठिन है, ज्ञान के स्वाध्याय से सहज वश मे
हो जाता है। जो मन एक मिनट भी स्थिर नही रहता, ज्ञान के माध्यम
से घंटो उसे स्वाध्याय मे स्थिर रखा जा सकता है। अनुत्तरवासी देव
जिनकी आयुष्य सागरो की होती है और जहाँ पर मन को लगाने हेतु
विषय भोगो के कोई साधन नही होते, वे सारी आयु धर्म ध्यान
मे सम्यग्ज्ञान के माध्यम से लीन रहते है।

(८) **कर्मक्षय व मुक्ति का उत्तम साधन–** ज्ञानी दुर्दुर व लम्बी
स्थिति वाले कर्मो को भी अल्प समय में ज्ञान से क्षय कर देते है।
शास्त्रकार कहते है –

जं अण्णाणी कम्मं खवेइ, भवसय सहस्स कोडिहिं।
तं नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ, उसास मित्तेण।।[1]

---

1 प्रवचन सार ३/३८

अर्थात् अज्ञानी जिन कर्मो को करोडो भवो मे क्षय करता है, उसको त्रियोग संयत ज्ञानी एक श्वास मात्र मे नष्ट कर देता है।

ज्ञान रूपी नाव से संसार समुद्र भी सहज तिर लिया जाता है। आगम कहते हैं

संसार सागरं घोरं तर्तुमिच्छति यो नर।
ज्ञान नाव समा साद्य, पार याति सुखेन स ।।

अर्थात् जो मनुष्य घोर संसार सागर को तैरना चाहता है, वह ज्ञान नाव को प्राप्त कर आसानी से पार जा सकता है।

(६) **भोग भी निर्जरा के हेतु**– आत्म ज्ञानी भोग को भी पूर्व कर्म जनित रोग मान, उदासीन और दृष्टा भाव से वेदन करता हुआ उसके लिए पश्चात्ताप करता है, जिससे वह भोग दशा भी उसके लिए अपेक्षा से, निर्जरा का कारण बन जाती है। पंडित बनारसीदास जी ने इसी तथ्य को रहस्यपूर्ण बताते हुए लिखा है–

"अज्ञानी के भोग कर्म बध हेतु है।
ज्ञानी जन के भोग निर्जरा हेतु है।।
यह अचरज की बात समझ नहीं आवहि।
पूछे कोऊ शिष्य गुरु समझावहिं।।"

उपसहार :

जैन धर्म विवेक प्रधान है। बिना विवेक क्रिया अंधी और बिना क्रिया ज्ञान भी लगडा है। ज्ञान के बिना चरित्र नही होता। कहा है– नाणेण बिना न हुंति चरण गुणा।[•] ज्ञान से ही क्रिया शोभित होती है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री जयशंकरप्रसाद ने इस विषय मे बडा सुन्दर लिखा है –

• उत्तरा० २८/३०

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यो पूरी हो मन की ।
एक दूसरे से न मिल सके , यह विडम्बना है जीवन की ॥"

जैसे रोगी को स्वस्थ होने हेतु रोग व दवा की जानकारी त दवा का सेवन आवश्यक है, वैसे ही विषय, कषाय मिथ्यात्वादि से ग्रसि ससारी जीव को उससे मुक्त होने हेतु, भेदज्ञान और क्रिया रूपी दवा क सेवन दोनो परम आवश्यक है।

'दशवैकालिक सूत्र' ४/१० में कहा है– 'अण्णाणी कि का किवा सेय पावग।' अर्थात् अज्ञानी धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, हिताहि आदि को नही समझ सकता । अत सम्यग्ज्ञान को उपलब्ध होने हे सर्वप्रथम सद्प्रयास होना चाहिए और इस हेतु अपने अज्ञान का ज्ञा करना, उसकी अनुभूति करना अपेक्षित है। क्योकि आत्मा सम्बन्धी स ज्ञान के अभाव मे अनेक भ्रान्तिया बनी रहती है, जिसके कारण जी सही दिशा मे प्रगति नही कर पाता। सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि हे मानवीय गुणो को विकसित करना दूसरा मुख्य उपाय है।

आत्मा अनादि काल से सम्यग्ज्ञान के अभाव मे अनत–अन दु खो का वेदन करती रही है। शास्त्रकार कहते है–

"अण्णाण परम दुक्ख अण्णाण जायते भय।
अण्णाण मूलो ससारे, विविहो सव्व देहियं।।"

अर्थात् अज्ञान सबसे बडा दु ख है, अज्ञान से भय उत्पन्न हो है, अज्ञान सब प्राणियो के ससार भ्रमण का मूल है। और भी कहा है

"जावत अविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्ख सभवा ।
लुप्पति बहुसो मूढा, ससारम्मि अणत सो ।।"[१]

१. उत्तरा० ६/१

अर्थात् ससार मे जो तत्त्व बोध हीन अज्ञानी पुरुष है, वे सभी दुख के पात्र है। इस अनत ससार में वे मूढ प्राणी बार–बार विनाश को प्राप्त होते रहते है।

इससे भिन्न 'ज्ञान' सर्वोत्तम आत्मिक गुण हैं। इसके समक्ष ससार मे कुछ नही । कहा है–

"अन्नं दान पर दान, विद्या दान तत् परम्।
अन्नेन क्षणिका तृप्तिर, यावज्जीवन च विद्यया।।"

अर्थात् अन्न दान जो परम दान है, उससे भी ज्ञान श्रेष्ठ है, कारण अन्न से क्षणिक तृप्ति होती है, पर ज्ञान से यावज्जीवन की तृप्ति होती है।

अत 'सम्यक् ज्ञान' को सम्यक् प्रकार जानकर उसकी सम्यक् उपलब्धि व सेवना करना ही श्रेयस्कर एव कल्याणकारी है।



२. सम्यक् दर्शन

"सौ काम छोड देव गुरु दर्शन करना चाहिए।
हजार काम छोड कर स्वाध्याय करना चाहिए।
लाख काम छोडकर आत्म चितन करना चाहिए।
करोड काम छोडकर, सम्यक् दर्शन करना चाहिए।"

रत्नत्रयरूप मोक्ष के भव्य मार्ग का प्रथम और प्रमुख सोपान 'सम्यक् दर्शन' है। इसी कारण आचार्य उमास्वामी ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' का शुभारम्भ करते हुये सर्वप्रथम कहा है–'सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः।' ज्ञानियो ने धर्म साधना व आराधना का मूल 'दर्शन' बताया है। कहा है–'दंसण मूलो धम्मो।'[1] वस्तुत सम्यक् दर्शन साधक के लिये अक समान है और समस्त क्रियाएं बिन्दिया है। जैसे बिना अक के बिन्दियों का कोई महत्त्व नही, वैसे ही बिना सम्यक् दर्शन के ज्ञान–क्रिया है। कहा भी है–

"सम्यक् दर्शन अंक है, और क्रिया सब शून्य।
अक जतन कर राखिये, शून्य–शून्य दस गुण।।"

बिना सम्यक् दर्शन के ज्ञान भी एक दिमागी कसरत व ससार भ्रमण का ही हेतु होने से वह भी एक तरह की बौद्धिक प्रक्रिया होने से क्रिया शब्द मे समाहित हो जाता है। इसी कारण ऐसे ज्ञान को अज्ञान या कुज्ञान कहा गया है।

---

१. दर्शन पाहुड

ज्ञान और चारित्र से भी अधिक महत्त्व दर्शन को क्यो दिया या है ? इसका समाधान प्रभु ने अपनी अतिम देशना मे इस प्रकार त्या है–

"नादसणस्स णाण, णाणेन बिना न होति चरण गुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमुक्खस्स निव्वाण।।"[1]

अर्थात् बिना दर्शन के ज्ञान, बिना ज्ञान के चारित्र, बिना चारित्र ; मोक्ष और बिना मोक्ष के निर्वाण की प्राप्ति नही होती है। इसी के गरण चारित्र रहित का सिद्ध होना सभव है पर दर्शन रहित को निपना भी सभव नही है। आगमकार कहते है–

"दसण भट्ठा भट्ठा, दसण भट्ठस्स णत्थि निव्वाण।
सिज्झति चरिय भट्ठा, दसण भट्ठा ण सिज्झति।।"[2]

म्यक् दर्शन का अर्थ .

सम्यक् शब्द के अर्थ है– सच्चा, सही, यथार्थ, भलीभाति त्यादि। दर्शन शब्द के अर्थ निम्न प्रकार है –

(१) देखना . दृष्टि – जैसी दृष्टि होती है वैसी ही सृष्टि ाभासित होती है। इस पर दो दृष्टात प्रस्तुत है –

क) दृष्टात दुर्योधन व युधिष्ठिर का :

एक बार श्रीकृष्ण वासुदेव ने दुर्योधन को बुलाकर, द्वारका मे ह रहे सज्जनो की सूची निश्चित अवधि मे बनाकर प्रस्तुत करने को हा । दूसरी तरफ युधिष्ठिर को बुला, उससे द्वारका मे रह रहे सभी र्जनो की सूची तैयार कर प्रस्तुत करने को कहा।

निश्चित अवधि बाद दोनो को बुलाया गया। दुर्योधन से सूची

. उत्तरा २८/३०
. भक्ति परिज्ञा गा० ६६

प्राप्त की गयी, उसमे एक भी नाम नही पाया गया। पूछने पर बत गया कि उसे एक व्यक्ति नगर मे ऐसा नही दिखा जो सज्जन हो। स मे कोई न कोई दुर्गुण है। जब युधिष्ठिर से सूची प्राप्त की गयी उसमें मात्र एक ही नाम लिखा हुआ था। पूछने पर उसने बताया नगर मे उसे एक भी दुर्जन नही दिखा और विचार करने पर स्वय ही दुर्गुणो से भरा पाया। अत स्वयं का नाम ही इसमे अंकित किया है। श्री कृष्ण महाराज ने दोनो सूचिया दरबार मे प्रस्तुत कर बताया देखिये दुर्योधन की दृष्टि मे, पूरे नगर मे कोई सज्जन नही है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि की पुष्टि करता है। युधिष्ठिर की गुण दृष्टि जबकि दुर्योधन की दोष दृष्टि थी। श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति मे नदिया–उमग्ना व निमग्ना का वर्णन आता है। उमग्ना मे जो भी जाये, उसे वह बाहर फेक देती है, तो निमग्ना अपने अन्दर डुबो है। गुण दृष्टि वाला निस्सार कचरा फेकने हेतु उमग्ना व गुणो को ग्रह करने हेतु निमग्ना प्रकृति का होता है।

(ख) दृष्टात मृत युवती का :

एक साधु, उसका भक्त व साथ मे एक कुत्ता वीरान पथ मे ज रहे थे। मार्ग मे उन्हे एक मृत युवा महिला का शरीर पडा मिल साधु के साथ जो भक्त था वह कामी था। अत. उसने विचारा, क्या अच्छा होता वह युवती जीवित मिलती। भोग का एक उत्तम साधन थ साधु ने उसे देख कर कहा– अहो! पुण्योदय से प्राप्त साधन का उत्त साधन इसे मिला था, जिसे वैसे ही इसने खो दिया। इनके साथ कुत्ता था, वह वहीं ठहर कर, यह विचारने लगा कि इस मृत महिला क मास बडा स्वादिष्ट होगा। साधु व भक्त चले जावे, तो इसका भक्ष करूं। इस प्रकार निमित्त व घटना एक है। फिर भी तीनो की दृष्टि अलग–अलग होने से, इनके विचार भी अलग अलग है। अत दृष्टि के अनुसार ही सृष्टि नजर आती है।

(२) **विचारधारा (फिलासफी)** :– तत्व चितन की विशिष्ट द्धति – ससार मे मुख्य ६ दर्शन है–यथा (१) सांख्य, (२) वैशेषिक, (३) मासक, (४) बौद्ध, (५) जैन व (६) नैयायिक।

(३) **मत (सप्रदाय)** – ससार मे अनेक मत–मतान्तर है । ख्यत ३६३ मत है जिनमे अकियावादी ८४, अज्ञानवादी ६७, कियावादी ,०, विनयावादी ३२ है ।[1]

(४) **चिंतन** – मनन करना मनुष्य का स्वभाव है। कहा है–

"मनन करे चितन करे, मनुज उसी का नाम ।
आख मूद पीछे लगे, यह पशुओ का काम ।।"

चितन दो प्रकार का होता है। एक सद्चिंतन व दूसरा सद्चितन। जो चितन आत्मस्वरूप की उपलब्धि हेतु नय–निक्षेपो एवं माणो से युक्त है, निष्पक्ष है,और सत्य पर आधारित है, वह सद्चितन । इसके विपरीत जो असद्भूत है, पदार्थपक्ष युक्त है, एकान्त है, आप्त णी से विपरीत है, और आत्मस्वरूप से विमुख ले जाने वाला है वह सद्चितन है।

(५) **श्रद्धा (आस्था)** – यह भी दो प्रकार की होती है–

(i) **कुश्रद्धा** – अज्ञान मिथ्यात्व के उदय से उत्पन्न मूढता से ह होती है । यह मुख्यत तीन प्रकार की होती है –

(अ) **देव मूढता** – सिद्ध, अरिहन्त से भिन्न सकषायी कामी, ोगी, अधर्मी देवो को देव मानना ।

(ब) **गुरु मूढता** – निर्ग्रन्थ साधु–साध्वियो से भिन्न पाखंडी, साधुत्व गुण मे भ्रष्ट, मास, मदिरा आदि कुव्यसन सेवियो को गुरु ानना।

---

1. जैन तत्त्व प्रकाश, मिथ्यात्व प्रकरण।

(स) **धर्म मूढता** – केवली प्ररूपित धर्म से भिन्न कुधर्म धर्म माने जैसे–नदी स्नान, गंगाजी जाना, श्राद्ध करना आदि मे माने।

(ii) सुश्रद्धा– उपरोक्त तीनों मूढता दूर होने पर यह होती है। इसके प्रगट होने पर राग–द्वेष के विजेता सर्वज्ञ प्रभु व सिद्ध को देव आरम्भ–परिग्रह से निवृत[1] पंच महाव्रती निग्रंथ संतो गुरु और सर्वज्ञ प्ररूपित दया प्रधान धर्म को अन्त: करण से स्वीकारता है। उसकी सुश्रद्धा इस पद से व्यक्त होती है।।

"देव हमारे श्री अरिहत, गुरु हमारे गुणीजन सत।
सूत्र हमारा सत्य निधान, धर्म हमारा दया प्रधान।।"

ऐसी सुश्रद्धा आना बडा दुर्लभ है। कहा है– 'श्रद्धा दुल्लहा।' इस विषय मे ज्ञातासूत्र के अध्ययन तीन में एक दृष्टान्त दिया गया है। चम्पा नगर के दो बालक मित्रो को मोरनी के अंडे मिले। दोनो एक–एक अण्डा घर ले गये। एक बालक अण्डे नित्य उठाकर उसे हिला–हिलाकर देखता कि इसमे मयूर पैदा हुआ नही ? दूसरे बालक ने उसे एकान्त मे मुर्गी के अण्डों के साथ रखा, जहां उसे मुर्गी से समुचित गर्मी व पोषण भी मिलता रहा। दिनो बाद इस दूसरे बालक को अण्डे से मयूर प्राप्त हो गया व कलाकार के माध्यम से कला मे निपुण बना दिया। उसका नृत्य लोग वाह–वाह कह उठते थे। किन्तु प्रथम बालक का अण्डा बार–बार हिलाकर देखने से खराब हो गया व उसे मयूर नही मिला। इससे उ बडा पश्चात्ताप हुआ। सुश्रद्धा के अभाव मे देव, गुरुधर्म का संयोग पर भी, सम्यक् दर्शन रूपी मयूर की उपलब्धि नही हो पाती है।

१. "सोहि गुरु जो णाणी, आरम्भ परिग्गह विरओ।
पचिदिय सवरणो, तह नव बम चेर गुत्ति धरो।।"
जैन तत्त्व प्रकाश पृ० १२१।

(६) प्रतीति और (साक्षात्कार) – इसके भी दो भेद है यथा–

(i) **अशुद्धोपयोग** – जो पौद्गलिक सुख को सच्चा मान, सकी प्राप्ति का चितन करे। जैसे कहा है–

"तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख की ही अभिलाषा।
मै समझ न पाया अब तक ही, सच्चे सुख की प्रभु परिभाषा।।"

श्रीमद् देवचन्द्रजी के शब्दो मे ऐसे साधक की चर्या इस कार होती है–

"अवगुण ढाकण काज, करू जिनमत क्रिया ।
दृष्टि राग को पोस, तेह समकित गिनुं।।"
"स्याद्वाद की रीत, न जानु निजपणु।
विरहमान भगवान् सुणो, मुझ विनती।।"

(ii) **शुद्धोपयोग स्वरूप रमणता**– आत्मा से आत्मा की प्रतीति या परम सत्य की प्रत्यक्ष स्वानुभूति होना। इससे उसका ६ बातो पर अटल विश्वास होता है–

" आत्मा छै, नित्य छै, छै कर्ता निज कर्म।
पुनि भोक्ता बलि मोक्ष छै, मोक्ष उपाय सुधर्म।।"[१]

स्वरूप रमणता से उसकी दृष्टि मे ज्ञायक और ज्ञेय से अधिक जीव–अजीव का सम्बन्ध नही रहता और सासारिक रिश्तेनाते को स्वप्नवत् मानने लगता है। वह शरीर को भी पर अनुभव करता है, जिससे उसकी आसक्ति पुद्गलो मे कम हो जाती है। उसकी अन्तरग मान्यता के सम्बन्ध मे तत्त्ववेत्ता श्री विनयचन्दजी ने 'चौबीसी' मे कहा है–

"सर्प अंधेरे रासडी रे, रूपो सीप मझार।

---

१. श्रीमद् राजचन्द्र।

मृग तृष्णा अम्बु मृषारे, तिम जगनो व्यवहार ।जीवरे
अग्नि विषे ज्यू मणि नहीं रे, मणि में अग्नि न होय ।
सपने की सम्पति नहीं रे, त्यो आतम जग जोय ।जीवरे।
तू पार्श्व जिनेश्वर वंद।।"

ऐसे शुद्ध श्रदान से, वह निराकुल, निराबाध अवर्णनीय सुख अनुभूति करने लगता है, जिससे ससारी सुख फीके लगने लगते है

उपरोक्त विवेचन से सम्यक् दर्शन के अर्थ इस प्रकार होते है, यथार्थ दृष्टि, यथार्थमत, यथार्थ चिंतन, यथार्थ श्रद्धा और यथार्थ प्रती (स्वानुभूति)। स्वदर्शन, आत्मदर्शन, ब्रह्मदर्शन, आत्म साक्षात्कार अ इसके पयार्यवाची शब्द है।

सम्यग्दर्शन की व्याख्या–

'तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनम्'[1] के अनुसार तत्त्व विषयक यथा श्रद्धा होना, अर्थात् वस्तु स्वरूप को यथातथ्य समझकर, तदनुकू आत्मा में आस्था होने का नाम सम्यग् दर्शन है।

आत्म विकास का वास्तविक आरम्भ, सम्यग् दर्शन की उपल से होता है और उसकी पूर्णता सम्यग् चारित्र की पूर्ण प्राप्ति पर हो है। सम्यग्दर्शन की उपलब्धि पर पूर्व की समस्त मिथ्या धारणा पूर्वाग्रह, अहकार, पक्षपात, कदाग्रह आदि समाप्त हो जाते है। आ मतार्थी से आत्मार्थी बन द्विजन्मा हो जाता है, जिससे आत्मा अ आनन्द व शान्ति की अनुभूति करता है।

सम्यग् दर्शन के पर्यायवाची नाम – अपेक्षा पूर्वक भेद अ स्वरूप पर्याय वाचक नाम इस प्रकार है . –

सम्यक्आत्मा, सम्यक्प्रतीति, सच्ची समझ, आत्मदर्शन, स्वरूपदर्श

---

१. तत्त्वार्थसूत्र गा० २अ० १

वदर्शन ब्रह्मदर्शन, आत्मानुभव, स्वानुभूति, आत्मज्ञान, आत्मस्थिरता, ात्मरमणता, आत्मसाक्षात्कार, आत्मनिश्चय, परमतत्त्व की अनुभूति, त्त्वार्थश्रद्धा, अतरउपयोग, श्रद्धाबोधिरत्न, सत्यनिश्चय, सत्यरुचि, त्त्वइहा, परमसत्त्वदर्शन, निश्चयसत्यआत्मबोधि, भेदविज्ञानदर्शन, रमब्रह्मदर्शन इत्यादि।

सम्यग्दर्शन के भेद : इसके दो भेद है–(१) व्यवहार सम्यग् र्शन और (२) निश्चय सम्यग् दर्शन। वस्तु के वास्तविक स्वरूप को नेश्चय और उसके अनुकूल पोषक बाह्य शुद्ध साधनो को व्यवहार कहते । देव, गुरु धर्म का यथार्थ स्वरूप समझ, उस पर आस्था रखना व च्चीस प्रकार के मिथ्यात्वो का त्याग करना, सात तत्त्वो व नव पदार्थो र श्रद्धा करना व्यवहार सम्यग् दर्शन है। इससे प्ररूपणा व प्रवर्तना मेथ्यात्त्व दूर होता है। मिथ्यात्व के शेष दो प्रकार– परिणाम–मिथ्यात्व, ायोपशम या उपशम समकित की प्राप्ति पर तथा प्रदेश मिथ्यात्व, ायिक समकित की प्राप्ति पर दूर होते हैं।[1] कषाय चतुष्क (अनन्तानुबन्धी ोध, मान, माया, लोभ) व दर्शन त्रिक (मिथ्यात्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय । समकित मोहनीय) कुल सात प्रकृतियो के शम, उपशम या क्षयोपशम े, आत्मा के अत्यन्त निर्मल विशुद्ध भाव प्रगट होकर तत्त्व सवेदन अंतर ो होना, निश्चय सम्यक् दर्शन है। इसकी प्राप्ति से आत्मा से, आत्मा ा, आत्मा के लिए, यथार्थ श्रद्धान होता है और प्राप्ति समय अपूर्व ानंद की अनुभूति होती है। यह मिथ्यात्व के हटने पर सभव है। मेथ्यात्व के मुख्यत चार कारण है– अज्ञान, देवी–भय तीव्र भौतिक ाकांक्षा, मिथ्यात्व–पोषक पडौसी समाज।

यह निश्चय सम्यग् दर्शन भी दो प्रकार से प्रगट होता है– (१) निसर्गज–बाह्य निमित्त कारण के बिना होवे और (२) आधिगमज–जिसमे बाह्य निमित्त–देव गुरु दर्शन या उनकी देशना आदि कारण होवे। किन्तु इन दोनो ही में अंतरंग कारण व अंतरंग पुरुषार्थ की नितान्त आवश्यकता

---

१ विचार रत्न सागर प्र० १५

समान रूप से रहती है। जो आत्मा की उपादान शक्ति से सबधित है। व्यवहार समकित को द्रव्य और निश्चय समकित को भाव भी कहते है।

तीन भेद – (१) दीपक – जो दीपक की तरह दूसरो को का प्रकाश तो दे, किन्तु स्वय के अन्त करण मे रहा मोह का दूर न कर सके। इसके पात्र असख्य जीव होते है। अभव्य जीव इसके पात्र होते है। जीव भव्य, अभव्य एवं भव्याभव्य(जाति भव्य) से तीन प्रकार के होते है।

भव्य मोक्ष गामी जीव होते है, ये भी तीन प्रकार के होते है यथा–निकट भवी, मध्यम भवी व दूर भवी। अभव्य कभी मोक्ष नही जा भव्याभव्य (जाति भव्य) मे भव्य के समान योग्यता होते हुए भी भी कभी मोक्ष नही जाते। कारण उनका स्वभाव कभी व्यवहार राशि आने का ही नही होता और अनतानंत काल तक सूक्ष्म निगोद आदि ही जन्म मरण करते रहते है। भव्य को संतान पैदा करने वाली, को बांझ व भव्याभव्य को कुलीन विधवा स्त्री की उपमा दी गई है भव्याभव्य रूप कुलीन विधवा को कुल की परपरा के कारण कभी पति का योग नही होता जिससे पुत्र रूप (मोक्ष) फल की प्राप्ति से वंचित रहती है।[१]

(२) रोचक– देव, गुरु, धर्म के प्रति रूचि रखे पर धर्म व विरति को आचरण मे न ले, न दूसरो को बोध देने मे सक्षम हो और धर्म की प्रभावना कर सके।

(३) कारक– जो स्वयं तत्त्ववेत्ता होकर दूसरो को भी तत्त्ववे करे, धर्म की प्रभावना करे।

पांच भेद – (१) उपशम, (२) क्षयोपशम, (३) क्षायिक, (४) वेदक व (५) सास्वादन।

१. विचार ज्ञानसार उप० देवचन्द्र कृत प्रश्न २०० से

पूर्व मे वर्णित मोहनीय कर्म की सातो प्रकृतियो के उपशम, ायोपशम व क्षय से प्रगट होने वाले आत्मा के विशुद्ध भावो को क्रमश ापशम, क्षयोपशम व क्षायिक सम्यक् दर्शन कहते है। क्षायिक सम्यक् र्शन से एक समय पूर्व के भाव, जब वह समकित मोहनीय के अन्तिम लिको को क्षय करता है, उस समय के भाव को वेदक सम्यक् दर्शन ते है। सम्यक् दर्शन से गिरते हुए मिथ्यात्व को प्राप्त होने से पूर्व भूमिका के भावो को सास्वादन समकित कहते है। क्षायिक समकित केवली या श्रुत केवली के निकट, कर्म भूमिया मनुष्य को ही प्राप्त होती है।[1]

सडसठ भेद – व्यवहार समकित के सडसठ भेद निम्न प्रकार है –

४ ३ १० ३ ५ ५ ५
... लिग विनय और शुद्धि, लक्षण भूषण दूषण जान।
८ ६ ६ ६ ६
प्रभावना आगार यतना, स्थानक भावना को पहिचान।"

इनमे से श्रद्धा, दूषण व भूषण का सभेद वर्णन लेख मे अन्यत्र किया जा चुका है। शेष का संक्षिप्त उल्लेख यहाँ किया जाता है :–

लिंग तीन–

(१) जैसे तरुण पुरुष रागरग पर नाचे, वैसे सम्यक्त्वी वीतराग वाणी पर राचे ।

(२) जैसे तीन दिन का भूखा उत्तम मिष्ठान रूचि से खावे, वैसे ही सम्यक्त्वी वीतराग वाणी का रूचि से श्रवण करे।

(३) जैसे पढने की रूचि वाले को वर्षों मे शिक्षण मिलने पर प्रसन्नता हो, वैसे सम्यक्त्वी को वीतराग वाणी श्रवण का योग मिलने पर प्रसन्नता होवे।

---

१. स्वामी कार्तिकेयानुपेक्षा का अध्याय बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा

विनय दस – (१–५) पच परमेष्ठि की विनय भक्ति करे (६–१०) कुल गण, संघ, साधर्मी व क्रियावान् की विनय भक्ति करे।

शुद्धि तीन– (१) मन शुद्धि–मन से वीतराग देव का ध्यान करे।
(२) वचन शुद्धि–वाणी से वीतराग देव का गुण गान करे
(३) काय शुद्धि–काया से वीतराग देव को वन्दन नमस्कार करे।

प्रभावना आठ–प्रभावना करे (१) आगमज्ञ होकर (२) धर्म क से (३) अन्यमतियो से वाद प्रतिवाद कर (४) निमित्त ज्ञान से (५) तप से (६) अनेक विद्याओ से (७) बडे त्याग से (जैसे ब्रह्मचर्य आदि लेकर) (८) आगमानुसार पद्य रचना करके।

आगार छ :– (१) राजा (२) पच (३) बलवान (४) देव (५) माता पिता गुरु आदि का (६) आजीविका हेतु, अन्य तीर्थियो को वंदना करनी पडे तो सम्यक्त्व मे दोष लगता है, पर सम्यक्त्व नष्ट नही होती ।

यतना छ :– बिना कारण मिथ्यात्वी से निम्न प्रवृतिया न क (१) आलाप (२) संलाप (३) दान (४) मान (५) वंदना व (६) गुणगान

भावना छ :– आत्मा है, नित्य है, है कर्त्ता निज कर्म
१ २ ३
पुनिभोक्ता वलि मोक्ष है, मोक्ष उपाय सुधर्म।
४ ५ ६

स्थानक छ :– (१) धर्म वृक्ष है, तो सम्यक्त्व जड है।
(२) धर्म नगर है, तो सम्यक्त्व किला है।
(३) धर्म आभूषण है, तो सम्यक्त्व पेटी है।
(४) धर्म माल है, तो सम्यक्त्व दुकान है।
(५) धर्म महल है, तो सम्यक्त्व नीव है।
(६) धर्म भोजन है, तो सम्यक्त्व थाल है।

स्थिति— क्षायिक समकित एक बार ही आती है व सादि अनन्त । उपशम समकित की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त व क्षयोपशम ो स्थिति जघन्य अतर मुहूर्त व उत्कृष्ट छासठ सागर साधिक है। दक की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट एक समय मात्र की होती है। उपशम मकित एक भव अपेक्षा जघन्य दो बार व समग्र भवोपेक्षा उत्कृष्ट पांच ार आवे। शेष दो समकित (क्षयोपशम व सास्वादन) एक भव अपेक्षा जघन्य एक बार, उत्कृष्ट प्रत्येक हजार बार और अनेक भवो की अपेक्षा जघन्य दो बार व उत्कृष्ट असख्य बार प्राप्त होती है।

म्यग्दर्शन की दुर्लभ प्राप्ति : — शास्त्रकार कहते है—

लभति विउला भोए, लभंति सुर सपया।
लभति पुत्तमित्त च, एगो धम्मो न लब्भई।।

अर्थात् चक्रवर्तियो के जैसे विपुल भोग व देवेन्द्रो जैसी विशाल नम्पत्ति भी अनेक बार प्राप्त हुई। पुत्र, मित्र, नाती, ज्ञाती भी अनेक बार मेले, किन्तु एक दुर्लभ धर्म—सम्यक् दर्शन की प्राप्ति नही हुई। श्री मचन्द्राचार्य ने कहा है — 'इस दुषम काल मे सम्यक् दर्शन की प्राप्ति केवल ज्ञान के समान दुर्लभ मानी गई है। सम्यक् दर्शन की प्राप्ति अति दुर्लभ होने का कारण, उससे सबधित निम्न पांच लब्धियो को[1] पूर्व में उपलब्ध करना होता है जिनकी उपलब्धि अनत—अनत काल व्यतीत होने पर भी नहीं हो पाती है।

(१) क्षयोपशम लब्धि — अनादि काल से ससार मे परिभ्रमण करते—करते जीव कभी शुभ सयोगवश ज्ञानावरण आदि आठो कर्मों की अशुभ प्रकृतियो के अनुभाग को, प्रति समय अनंत—अनत गुणा न्यून करता है। जीव के तब ऐसे प्रशस्त पुरुषार्थ प्रधान सुपरिणाम को, क्षयोपशम लब्धि कहते है। इस लब्धि से जीव सम्यक्त्व विरोधी घनीभूत कर्मो को अलग करता है। जैसे पर्वत से चट्टान का अलग करना।

१. निग्रथ प्रवचन अ० ६ व गोमट्टसार गाथा ६४६

अव्यवहार राशि एव निगोद से निकलने मे इस लब्धि के परिणामो
प्रधानता रहती है।

(२) **विशुद्धि (काल) लब्धि** – क्षयोपशम लब्धि से अनुभाग होने से परिणामो मे सक्लेश व अप्रशस्ता की हानि होती है। प्रकृतियो के अधिक बध होने से इस लब्धि से, कर्मों मे और कमी विशेष निर्मलता प्राप्त करता है। काल लब्धि का स्वरूप इस प्रकार है जब भव्य जीव को अनत ससार भ्रमण कराने वाले कर्मों मे मदता न्यूनता आती है तब वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करने का होता है। इसे काल लब्धि कहते है। दूसरी काल लब्धि की यह है कि जब कर्मो की उत्कृष्ट या जघन्य स्थिति होती है तब समकित नही होती। किन्तु जब कर्म अन्तः कोटा–कोटि सागर स्थि के साथ बधते है और फिर निर्मल परिणामो से उनकी स्थिति सख्यात हजार सागर हीन अन्त कोटाकोटि सागर प्रमाण शेष रहती तब वह जीव प्रथम सम्यक्त्व के ग्रहण करने योग्य होता है। इन लब्धियो के होने पर जीव के कारण लब्धि की योग्यता प्राप्त होती है। कर्मो की विशुद्धि से नवघाटी (पाच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय व असज्ञी पचेन्द्रिय भव) को जीव पारकर सज्ञीपंचेन्द्रिय होने मे इस लब्धि की प्रधानता रहती है। इस लब्धि के प्रभाव से चट्टान रूप भी शिला खण्ड रूप रह जाते है। इस विशुद्ध लब्धि के कारण जीव सत्सग की, वीतराग वाणी श्रवण की व देव, गुरु के दर्शन की उ प्रकट होती है। शुभ कर्मोदय से वह दान, शील, तप आदि शुभ प्रवृत्तिय भी करता है तथा तत्त्वो का सामान्य ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है।

(३) **देशना लब्धि** – इससे जीव को सम्यक्त्व पोषक गूढ तत्त्व ज्ञान रूप धर्म देशना, किसी विशिष्ट ज्ञानी से सुनने की, अन्दर से रुचि जाग्रत होती है। इससे वह सद् पुरुषो की सगति कर या उनकी वाणी का स्वाध्याय कर, छ द्रव्यो और नव पदार्थों का ज्ञाता हो, देशना

१. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, अध्याय वोधि दुर्लभानुप्रेक्षा।

ब्धि को प्राप्त करता है। वह कर्मों की स्थिति को कम करता है, सिसे उसके शिला खण्ड रूप कर्म लोढी (बट्टी) रूपवत पूर्व से कम ाण मे रह जाते है।

(४) **प्रायोग्य लब्धि** – इस लब्धि से जीव अपने परिणामो को र्मल करता हुआ व्रत, प्रत्याख्यान, तप आदि से आयु कर्म को छोड ष सातो कर्मों की स्थिति को अन्त कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण मात्र र लेता है। इससे जीव हेय, ज्ञेय, उपादेय को समझने व हिताहित न्तन करने की रूचि वाला होता है। इस लब्धि मे जीव कर्मों के रस ो तीव्रतर से मद कर घाती कर्मों के अनुराग को चट्टान से पचेटेवत् घु कर लेता है तथा अघाती कर्मों के अनुभाग को विष समान से नीम ा काजी के समान मद रस वाला कर लेता है।

(५) **करण लब्धि** – यह अन्तिम लब्धि है जिसे प्राप्त कर जीव म्यक्त्वी बनता है। आयुकर्म को छोड कर शेष सातो कर्मों की स्थिति ो पूर्व मे अन्त कोटाकोटि प्रमाण रह गई थी उसमे भी पल्योपम के सख्यातवे भाग कम कर के जब ७००–८०० सागरोपम कम हो जाये ब यह करण लब्धि जीव को प्राप्त होती है।

इसकी पात्रता के लिए दिगम्बर परम्परा मे कहा है–'जो चारो तियो मे से किसी गति का जीव हो, पर भव्य हो, संज्ञी हो, पर्याप्ता हो, र्मल परिणाम वाला हो, ज्ञानोपयोग वाला हो, जागृत अवस्था मे हो ौर शुभ लेश्या वाला हो, वह इस करण लब्धि को प्राप्त करता है।[1] कन्तु श्वेताम्बर परम्परा मे इस लब्धि के तीन भेद बताये गये है।[2] जसमे प्रथम भेद यथाप्रवृत्ति करण तक जीव का भव्य होना जरूरी नही । उक्त कथन तीसरे करण लब्धि अर्थात् तीनो करण पूर्ण करने की पेक्षा समझना चाहिए।

. गोमट्टसार गाथा ६५०
. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा ११०२ से १२१८

प्रथम की चार लब्धियाँ सभी भव्य–अभव्य जीवो मे समान से पाई जाती है और जीव प्राय: अनंत बार इन्हें प्राप्त भी कर लेत, किन्तु पाचवी लब्धि करण की पूर्णता के अभाव में सम्यक् दर्शन उपलब्ध नही हो पाता है। करण लब्धि के तीन भेद का खुलासा; प्रकार है–

(i) **यथाप्रवृति करण** (अध प्रवृत्ति करण) – इसमें जीव अ... अन्त कोटाकोटि कर्म स्थिति को भी कुछ कम कर्मों को पचेटे से प्रमाण कर लेता है। इस स्थिति मे वह अन्तर में रही अनादि ... राग–द्वेष की अभेद्य प्रगाढ ग्रथि को अनुभव करने लगता हे। वह ... चेहरे रूप आत्मा पर लगे तीव्र क्रोध, मान, माया व लोभ आदि के ... को भी भावो से अनुभव करता है। अभव्य जीव भी पूर्व की चार ल... कर, इस करण को प्राप्त हो जाता है।

इस करण मे जीव मे विशुद्ध परिणाम प्रत्येक समय वृद्धि हैं। किसी समय नीचे के परिणामो की विशुद्धता नीचे से ऊपर परिणामो की विशुद्धता मिल जाती है। इस कारण से इसे अध प्... करण कहते है – इस करण में चार बाते आवश्यक रूप से होती है (i) प्रति समय अनंतगुणी विशुद्धता की वृद्धि (ii) निरतर स्थिति बंध ... घटना–कम स्थिति का बधना (iii) साता वेदनीय आदि प्रशस्त क... प्रकृतियो का समय–समय में वृद्धि पाता हुआ गुड, शक्कर, मिश्री अ... अमृत के समान चतु. स्थान पतित अनुभाग बंध और (iv) असा... वेदनीय आदि अप्रशस्त कर्म प्रकृतियो का अनंत गुणा घटता हुआ नीम, कांजी, करेला व आवला के समान अनुभाग होना।

भवितव्यता के योग से अकाम निर्जरा के द्वारा कर्म क्षय करत... हुए जीव का जब दो पुदगल परावर्तन काल शेष रहता है तव जी... आस्तिक रूप से आध्यात्म मार्ग के सन्मुख होता है। फिर वहां से ससा... परिभ्रमण करता हुआ जीव जब ऊँचा आता है, तो अनेक वार चढत...

ारता है। जब मात्र डेढ पुद्गल परावर्तन काल संसार शेष रहता है ाब वह जिनोक्त मोक्ष मार्ग मे आस्था और रूचि वाला होता है। फिर कर्म ोग से ससार भ्रमण करते–करते जब मात्र एक पुद्गल परावर्तन ससार ोष रहता है, तब वह मार्गानुसारीत्व प्राप्त करता है। इस भूमिका मे उसमे मार्गानुसारी के पैतीस गुण व मित्रादि दृष्टिया प्रगट होती है। फिर जेनोक्त मार्ग पर चलते–चलते मिथ्यात्व रस को मद, मदतर करता–करता नदी गोल पाषाण न्याय से जैसे नदी तट पर गिरा हुआ पत्थर पानी के थपेडो से टक्कर खाता हुआ स्वत गोल हो जाता है, वैसे ही जीव अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल शेष ससार भ्रमण अवधि मे आता है। तब पुण्योदय से आर्य देश, सज्ञी पचेन्द्रिय मनुष्य भव, उत्तम कुल प्राप्त करता है और सद्गुरु या विशिष्ट ज्ञानी के सदुपदेश से या सहज भाव से निमित्त पाकर यथा प्रवृति करण पूर्ण कर आत्मवीर्योल्लास से अपूर्व करण मे प्रवेश करता है।[1]

(ii) अपूर्वकरण – इसमे जीव के ऐसे विशिष्ट निर्मल भाव प्रगट होते है, जो पूर्व मे कभी नही आये। इससे अवशेष कर्मों को भी और कम कर उन्हे बोर प्रमाण से मूग समान कर लेता है। इससे वह राग–द्वेष की अभेद ग्रथि के निकट आकर, उसे तोडने की अपूर्व रूचि वाला होता है। वह ग्रथि भेद करने का सामर्थ्य भी प्राप्त कर लेता है। वह इस ग्रथि के मूल अनतानुबधी कषाय चतुष्क व दर्शनत्रिक को समझ, उनसे निवृत्त होने की अपूर्व चेष्टा भी करता है। किसी किसी आचार्य का मत है कि वह ग्रंथि भेद भी इसी करण मे कर डालता है। जिससे आत्मभावो में अपूर्व निर्मलता प्रगट होती है। इसी करण की भूमिका प्राप्त होने पर उसमे अपूर्व आत्म चिंतन प्रगट होता हे। जैसे–

लक्ष्मी अने अधिकार बढता शु बढयो. ते तो कहो।
शु ? कुटम्ब ए परिवार ने बढवा पणु ए नही कह्यो।।
बढवा पणु ससार नो नर देह ने हारी जयो।

---

1. विचार रत्न सार (उमा. देवचन्द्र कृत) प्रश्नो. १६८।

एवो विचार नही अहो ! हो ! एक पल तुमने हुवो।।[1]

इस करण मे प्रति समय असख्यात गुणी परिणामो मे शुद्धि ‘ अपूर्वता होने से इसे अपूर्व करण कहते है। इस काम मे प्रवृति वाला जीव मिथ्यात्व मोहनीय को, मिश्र–मोहनीय रूप मे परिणत फिर समकित मोहनीय के रूप मे परिणत कर देता है। इसमे भी बाते आवश्यक रूप से होती है–(i) गुण श्रेणी (सत्ता कर्म को उदय मे ला समय–समय असख्यात गुणी निर्जरा करना) (ii) सक्रमण (अन्य प्रकृति मे पलटना) (iii) स्थिति खंडन व (iv) अनुभ खंडन।

(iii) **अनिवृत्तिकरण**– यह अपूर्वकरण के अनंतर होता है इसमे जीव के परिणाम अति विशुद्ध एव निर्मल होते है। इस भूमिका जीव नियम से अपूर्व सामर्थ्य बल को विशिष्ट आत्म–बल के सा प्रयोग कर ग्रन्थि भेद करने मे सफल होता है और अपूर्व दिव्य आ प्रकाश रूप सम्यग्दर्शन को नियम से प्राप्त कर लेता है। इसमे पूर्व मूग प्रमाण रहे कर्मो को भी और कम कर, उन्हें बजरीवत (बालू रेतव बना डालता है। इससे यह अनंत संसारी से पडत ससारी हो जाता और अधिक से अधिक देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल मे अवश्य म जाता है। वैसे अर्द्धपुद्गल काल को भी केवल ज्ञान का विषय होने अनत माना है।[2]

अनिवृत्तिकरण के अन्तिम समय मे निश्चय से जीव दर्श मोहनीय और अनतानुबंधी चतुष्क के प्रकृतिवंध, स्थिति बन्ध, अनुभ बन्ध और प्रदेश बन्ध के उदय की योग्यता नष्ट कर, उपशान्त भाव प्राप्त करता है, जिससे जिन प्रणीत तत्त्व का यथा तथ्य करता हुआ व उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है। तब जीव को मार्ग प्राप्त हुआ कह है । वह भवाभिनंदी से आत्माभिनंदी की ओर वढता है। जीव तीन त

---

१ श्री मद् रामचन्द्र के पदो से।

२. खानिया तत्त्व चर्चा भा. २. पृ. ७८५।

होते है– भवाभिनदी (मिथ्या दृष्टि), पुद्गलानदी (श्रावक) व आत्मानदी ने)।[1]

इन तीनो करणो मे अनिवृत्तिकरण का काल मात्र अन्तर–मुहूर्त है। अपूर्व करण का काल इसमे असख्यात गुणा और अध प्रवृति रण का काल अपूर्व करण से सख्यात गुणा अधिक है। असख्यात का ख्यात गुणा काल भी अन्तर मुहूर्त ही समझना चाहिए क्योकि अन्तर्मुहूर्त असख्यात भेद होते है।

सम्यग् दृष्टि की विचारणा – दर्शन मोहनीय त्रिक एव नतानुबधी कषाय चतुष्क–इन सात प्रकृतियो पर विजय प्राप्त कर लेने सम्यग् दृष्टि की प्रकृति शान्त एव विचारणा बडी निर्मल, प्रशस्त, ध्यक्ष और 'जिनपणत्त तत्त सच्च' की श्रद्धा से पूरित होती है। उसकी चारणा के कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत है –

(i) मेरा सो सत्य नही, सत्य सो मेरा है। मात्र जिनवचन ही र्ण सत्य है,ऐसी निशक श्रद्धा होती है।

(ii) यह जगत धर्मशाला है जिसमे मेरा मकान मात्र कुछ समय ी अनिश्चित दुकान है। वह कहता है "दुनिया मे रहता हूँ, दुनिया का लबगार नही हूँ। बाजार से गुजरा हूँ खरीददार नहीं हूँ ।।"

(iii) प्राप्त धन, पूर्व पुण्य की अस्थायी धरोहर है जिसका वेयोग निश्चित है।

(iv) पुत्र, पौत्र, आत्मज नही वरन् औपचारिक निशान है।

(v) इष्ट–अनिष्ट, सुख–दुख, शत्रु–मित्र, धन–निर्धन आदि का मूल कारण स्वय के कर्म है।

(vi) हिसा मे धर्म नही और धर्म मे हिसा नही होती।

(vii) धर्म सवर निर्जरा रूप होता है।

(viii) आत्मा है, नित्य है, कर्त्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है और मोक्ष का उपाय सुधर्म (केवलि प्ररूपित) है।

---

१. विचार रत्न सार प्र. २०१ तथा आध्यात्म ग्रथ सार।

(ix) सम्यक्त्व रहित स्वर्ग मे जाने की अपेक्षा सम्यक्त्व
नरक मे जाना ठीक है।

(x) वह सत्य, दया, शान्ति, क्षमा, शील, न्याय,
प्रमाणिकता, त्याग वैराग्य आदि में आत्मार्थी का निवास मानता
इसके विपरीत मतार्थी होते हैं।

(xi) वह शम, सवेग, निर्वेद, आस्था व अनुकम्पा युक्त
है।

सम्यक्त्वी की इच्छाए—(१) अभव्य जीव भी ६ काया के
की रक्षा करे। (२) भव्य जीव अपना मिथ्यात्व छोडे। (३) सम्यग्
व्रत धारण करे। (४) व्रती महाव्रती बने। (५) महाव्रती अप्रमादी बने।
अप्रमादी अवेदी बने। (७) अवेदी अकषायी बने। (८) अकषायी
बने। (९) केवली अयोगी बने। (१०) अयोगी सिद्ध बनकर कृत
होवे।

सम्यक्त्व प्राप्ति के दुर्लभ बोल— जैन धर्म के महान्
स्वामी कुमार ने कहा है—चारो गतियो मे सम्यक्त्व की प्राप्ति हो
है। किन्तु प्रथम तो जीव भव्य हो, दूसरे वह सज्ञी पचेन्द्रिय हो,
प्रति समय अनत गुणी विशुद्धि वाला हो और पीत, पद्म, शुक्ल इन
शुभ लेशाओ मे कोई एक लेश्या से युक्त हो। चौथे जाग्रत हो—अ
निद्रा—निद्रा, प्रचला—प्रचला और स्त्यान गृद्धि इन तीन मोटी निद्राओ
रहित हो। पाचवे उसके छ ही पर्याप्तिया पूर्ण हो चुकी हो। छठे
हो अर्थात् साकार उपयोग से युक्त हो, कारण निराकार दर्शनोपयोग
सम्यक्त्व उत्पन्न नही होता है। सातवे उसके ससार भ्रमण का उ
काल अर्द्ध पुद्गल परावर्तन मात्र रह गया हो। ऐसे जीव को ही सयक्त्व
का लाभ होता है।[1]

---

१. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा—अध्याय वोधि दुर्लभानुप्रेक्षा मे।

यग्दर्शन प्राप्ति के उपाय – जीव सम्यग्दर्शन मे परित्त ससारी होता अत परित्त संसारी होने के उपाय ही सम्यग्दर्शन प्राप्ति के उपाय झने चाहिये। प्रभु ने ये इस प्रकार कहे है–

"जिण वयणे अणुरत्ता, जिण वयण करेति भावेण।
अमला असकिलिट्ठप्रठ्टा, ते होति परित्तससारी ।।"[१]

(१) **जिनवयण अनुरत्ता** – जो जिन सर्वज्ञ की वीतराग वाणी श्रद्धापूर्वक श्रवणकर उसमे लवलीन रहते है, अर्थात् जिनकी हड्डी ज्जी भी जिनवाणी मे अनुरक्त होती है। उनकी दृढ श्रद्धा होती है– ाणी तो घनेरी पण वीतराग तुल्य नाहीं, इनके सिवाय और छोरासी हानी है।"

(२) **जिनवयण करेति भावेण** –जो वीतरागवाणी के अनुरूप ाय के भावो को करते है, अथार्त् वीतराग भाव को अपनाते है। से–"हू स्वतत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता दृष्टा आतम राम ।"[२]

(३) **अमले** –मिथ्यात्व मोहनीय आदि दर्शनत्रिक रूप मल से ो अपने को बचाकर निर्मल मानस रखते है, जिससे वे न्यायी, निष्पक्षी ौर सत्यानुरागी होते है।

(४) **असकिलिट्ठ** –सक्लेश–राग द्वेष आदि तीव्र काषायिक रिणति से अपने को लिप्त नही करते, जिससे वे शान्त और समभाव युक्त रहते है।

म्यग्दर्शन प्राप्ति के साधन :

बहिरग के दस साधन इस प्रकार है[३] –

(१) निसर्ग रूचि–स्वभाव से–जातिस्मरणादि ज्ञान से तत्त्वो पर भ्द्धा हो जाना। (२) धर्मोपदेश से। (३) आज्ञा पालन से (देव–गुरु की

१. उत्तरा. ३६/२५८
२ स्वामी सहजानन्दजी के पद से ।
३. उत्तरा. ३६/२५८

आज्ञा पालन से)। (४) सूत्रो (जिनागमों) के स्वाध्याय से। (५) बीज-
मे ही बहुत ग्रहण करने से । (६) अभिगम--अग तथा अगबाह्य
सिद्धान्तो को पढ सुश्रद्धा करना। (७) विस्तार से-विषय के खु
सुनने-पढने से। (८) क्रिया-धर्म क्रिया से। (६) संक्षेप-बिना
पढे-सुने भी शुद्ध श्रद्धा होना तथा (१०) धर्म रुचि से-जिन भाषित
मे अनन्य श्रद्धा से।

अतरग-तीन साधन है[1] दर्शन मोहनीय कर्म का (१)उपशम
क्षयोपशम व (३) क्षय ।

सम्यग्दर्शन के चार अग [2] .

परमत्थ सथवोवा, सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वावि।
वावण्ण कुदसण वज्जणा य, सम्मत्त सद्दहणा।।

अर्थात् (१) परमार्थ की स्तुति करना-देव, गुरु, धर्म आदि
कीर्तन करना । (२) सुदृष्ट-आचार्यों, उपाध्यायो व साधुओ की
करना। (३) दर्शनभ्रष्टो का व (४) कुदर्शनियो का त्याग करना।

राम्यग्दर्शन के आठ अग

अपेक्षा से सम्यग्दर्शन के आठ अग भी कहे है जो इस प्र
है-

निस्सकिय, निक्कखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढ दिट्ठिय।
उववूह थिरीकरणे, वच्छले पभावणे अट्ठे ।। [3]

अर्थात्- (१) **निशकित**- आत्मा के अस्तित्व आदि मे शका रहित हो
(२) **निकाक्षित** - अन्य मतो की तरफ आकर्षित न होना
(३) **निर्विचिकित्सा**- धर्मफल मे सदेह न होना या त्यागियो
मलिन भेष से घृणा न करना ।

१ तत्त्वार्थ सूत्र १-८।
२ उत्तरा २८/२८। ३ उत्तरा २८/३१।

(४) **अमूढ दृष्टि**– देवमूढता, गुरुमूढता व धर्ममूढता न होना।
(५) **उपवृहण**– सम्यग्दर्शन की पुष्टि करना।
(६) **स्थिरीकरण**– धर्म से डिगते हुए को स्थिर करना।
(७) **वात्सल्य**– स्वधर्मी से अनुराग रखना।
(८) **प्रभावना**– धर्म की महिमा–गरिमा को आगे बढाना।

सम्यक्त्व के लक्षण (लिग)–

सम्यक्त्व प्राप्ति पर आत्मा मे एक अलौकिक अपूर्व अन्तर चेतना प्रगट होती है, जिससे वह बहिरात्मा से अन्तरात्मा हो जाता है, जो आध्यात्मिक दृष्टि से उसका एक प्रकारसे दूसरा जन्म होता है। इस अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि को द्विजन्मा भी कहा जा सकता है। उसमे निम्न पाच मुख्य लक्षण मिलते हैं–

(१) **शम**– अनतानुबधी कषायो का शमन या उपशम या क्षयोपशम कर समत्व भाव की प्राप्ति करना। प्रतिकूल पर विशेष द्वेष और अनुकूल पर विशेष राग न करना। उसकी भावना 'समता सर्वभूतेषु' की होती है। वह शान्त स्वभावी होता है।

(२) **सवेग**– मोक्ष मार्ग की तरफ आवेग होना। वह ससार मे रहकर भी उसे जेलखाना मान, उसमे कमलवत् रह, विषयो के पानी से अलग होने का प्रयास करता है। कहा भी है –

'जहा पोम्प जले जाया, नो व लिप्पइ वारिणा।'

उसकी जीवनचर्या के लिए कहा है –

"सम्यग् दृष्टि जीवडा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अतर मे न्यारा रहे, ज्यो धाई खिलावे बाल।।

इसी सदर्भ मे यह पौराणिक सदर्भ भी उल्लेखनीय है। एक बार राम भक्त हनुमान ने भक्त विभीषण से पूछा–आप लका में कैसे रहते है ? विभीषण का उत्तर 'था–

"सुनहू पवनसुत रहन हमारी।
जिम दातन बिच जीभ बिचारी।।"

संवेगी समदृष्टि का ससार मे रहना भी इसी ढंग का होता है

(३) **निर्वेद**– ससार के विषय भोगो के प्रति उदासीन रहन जैसे रोगी दवा मजबूरी से लेता है, वैसे भोग वाले कर्म के उदय व होने से वह उन्हे भोगते हुए भी, अतर मे छोडने की इच्छा रखता है उत्कृष्ट सम्यग्दृष्टि तो भोग को रोग और धन–दौलत को मिट्टी मानता है। कहा है–

चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखा भोग।
काग पीठवत् गिनत है, सम्यग्दृष्टि लोग।।

(४) **आस्था**– मोक्षमार्ग मे व आत्मा आदि तत्वों पंर उसकी अटूट श्रद्धा होती है। आगम की भाषा मे आत्मा के प्रति उसकी अगाध श्रद्धा इस प्रकार अभिव्यक्त होती है–

'एगो मे सासओ अप्पा, नाण दसण सजुआ।[२]
(ज्ञानदर्शन से संयुक्त आत्मा शाश्वत है)

अनुकम्पा– जीव मात्र पर उसके अतर हृदय मे दया भाव होता है। दीन–दुखी, पीडित, ग्लान, सकटग्रस्त आदि को देखकर उसका हृदय करूणा से द्रवित हो जाता है। वह उनको सुखी बनाने हेतु यथा संभव प्रयास भी करता है। 'अनुकम्पा' मानवता का भी लक्षण है। यह विशिष्ट ध्यान देने योग्य है की मानवता में अनुकम्पा की नियमा और सम्यग्दर्शन की भजना होती है, किन्तु सम्यग्दर्शन मे मानवता की नियम से नियमा होती हैं। अत जिनमे मानवता ही नही वे सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकते है ? उन्हे जीवन मे प्रथम मानवता विकसित करनी चाहिए।

---

१ रयणसार, गाथा १४०। २. उत्तराध्ययन।

इन पाच लक्षणो को इस प्रकार भी उल्लेखित किया गया है–

"कषायणी उपशान्ता, मात्र मोक्ष अभिलाष।
        १   २
भवे खेद प्राणी दया, त्या आत्मार्थ निवास।।[1]
  ३   ४   ५

यक्त्व के तीन दोष

(१) **चल**–सद् श्रद्धान मे भी कभी तरग की तरह क्षणिक लता होवे जैसे सर्व तीर्थकर समान है। फिर भी भ० शान्तिनाथ जी शान्ति देने मे भ० पार्श्वनाथजी को चमत्कार दिखाने मे विशेष नना।

(२) **मल**– जैसे शुद्ध स्वर्ण, मल के ससर्ग से दूषित हो जाता वैसे ही शका, काक्षा, विचिकित्सा, परपाखण्ड प्रशसा, पर पाखण्ड स्तव, इन पाच अतिचारो से निर्मल सम्यक्त्व दूषित होता है। जैसे य देवो को वदनादि करना। ज्ञान की न्यूनता से वीतराग मार्ग मे कुछ का होने से मल दोष लगता है। जैरो सचेलक वस्त्रधारी या अचेलक ग्न) को साधु न मानना।

(३) **अगाढ**– जैसे वृद्ध पुरुष के हाथ मे स्थित लाठी कापती है, े ही सम्यक् दर्शन के होते हुए भी आ।ने स्थानक मदिर ये मेरे है। यह ा शिष्य है, ये मेरे गुरु है इत्यादि। यह भी शुद्ध श्रद्धान मे हलकी कृति और शिथिलता लाते है।[2]

म्यक्त्व के पाच भूषण :

स्थैर्य प्रभावना भक्ति, कौशल जिन शासन।
तीर्थ सेवा च पचाणि, सम्यक्त्व भूषणम् ।।[3]

१ **स्थिरता**– धैर्य से डिगते को स्थिर करे। २ **प्रभावना**–धर्म

श्री मद् रामचद्र के पदो से।
स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा।
योग शास्त्र २/१६

प्रभावना करे। ३ **भक्ति**—देव, गुरु, धर्म की भक्ति करे। ४. **कौशल**—विचक्षण हो। ५ **तीर्थ सेवा**—चतुर्विध संघ रूप तीर्थ की सेवा भक्ति क

सम्यक्त्व के पाच दूषण :

"शंका काक्षा वितिगिच्छा, मिथ्यादृष्टि प्रशनम्
तत्सस्तवश्चपंचाणि, सम्यक्त्व दूषणम्।।"[1]

१— **शका** तत्वो के विषय मे शंका करना। २. **काक्षा**—तीर्थियो के आडम्बर देख उनकी चाह करना । ३ **वितिगिच्छा**—क्रिया के फल मे सदेह करना, या गुणियो का मलिन वेश देख करना । ४ **मिथ्यादृष्टि प्रशसा**—मिथ्या मत वालो की प्रशसा कर ५ **परपाखण्ड सस्तव**—मिथ्या मत वालो से सवाद,संलाप आदि परिचय

सम्यक्त्व के पच्चीस मल[2] :

(१—३) **तीन मूढता**— (पूर्व मे वर्णन किया जा चुका है) (४— **आठ मद**— १ जाति, २ लाभ, ३ कुल, ४ रूप, ५ तप, ६. बल, ७ वि ८ अधिकार। (१२—१७) **छ. आयतन**—१ मिथ्यादेव, २ मिथ्या—देवोपास ३ मिथ्यातप, ४ मिथ्यातपस्वी, ५ मिथ्याशास्त्र व ६ मिथ्या शास्त्र वाच (१८—२५) **आठ दोष**—१ सत्य मे शंका, २ जिनप्रणीत धर्म मे अस्थिर ३ विषयो की वाछा ४ शरीर व भोगो मे ममत्व भावना, ५ प्रतिक परिस्थिति मे तिरस्कार भाव होना। ६ गुणानुराग न होना, ७ पर प्रगट न करना व ८ स्वय व दूसरे के ज्ञान मे वृद्धि नही करने दे

सम्यक्त्व को निर्मल करने वाले तत्व— सवर और निर्जरा इन दो त की साधना से सम्यग्दर्शन निर्मल, स्वच्छ और पावन होता है।

सम्यक्त्व नाश के पाच कारण[3] :

---

१ योगशास्त्र २/१७

२—३ पू गणेशीलाल जी खद्दर वालो के जीवन चारित्र से तथा सद बोध मार्तण्ड पृ ५६ से

१, ज्ञान का गर्व करने से, २, तत्व जानने मे मद रूचि रखने से, ३, असत्य तथा निर्मम वचन बोलने से, ४, क्रोध के परिणाम रखने से, ५, आलस्य व प्रमाद[1] से।

सम्यक्त्व के ६३ गुण[2]– दिगबर परंपरानुसार सम्यक्त्व के ६३ गुण भी उल्लेखनीय है जो इस प्रकार है–

(१) सम्यक्त्व के २५ मल (जिनका वर्णन पूर्व मे दिया गया है) को त्यागने से पच्चीस गुण प्रकट होते है–२५

(२) सम्यक्त्व के आठ गुण –सवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, अनुकम्पा और आत्मजय–८

(३) सम्यक्त्व के पाच अतिचार–शका,काक्षा आदि के त्याग से पाच गुण प्रकट होते है–५

(४) सात प्रकार के भयो के त्याग से सात गुण प्रगट होते है–७

(५) माया,मिथ्यादर्शन व निदान इन तीन शल्यो के त्याग से तीन गुण प्रकट होते है–३

(६) मद्य, मास, मधु और पाच उदम्बर फलो को या कुल आठ अभक्ष्यो के त्याग से आठ गुण प्रकट होते है– ८

(७) जुआ, मास, मदिरा, शिकार आदि सप्त दुर्व्यसनो के त्याग से सात गुण प्रकट होते है– ७

इस प्रकार सम्यक्त्व के कुल ६३ गुण होते है।

सम्यक्त्व विरोधक कर्म बन्ध के ५ कारण[3]

'केवली श्रुत सघ धर्म देवावर्णवादी, दर्शन मोहस्य।'

अर्थात् केवली भगवन्त की, श्रुत (वीतराग वाणी) की, चतुर्विध सघ की, केवली परूपित धर्म की तथा देव (सिद्ध, अरिहन्त) की

---

१ शुभ योग (उपयोग) के अभाव को प्रमाद कहते है– ठाणाग ५/२/४१८
२ स्वामी कार्तिकेयानुपेक्षा ३–१२ धर्मानुपेक्षा से। ३ तत्त्वार्थ सूत्र ६।१४

विराधना निन्दा आदि करने से सम्यक्त्व का घातक दर्शन मोहनीय
का बंध होता है।

श्री ठाणांग सूत्र ठाणा ५-२ में भी कहा है- पांच स्थानो द्वारा जीव दर्शन मोहनीय कर्म का बंध करते है- (१) अरिहन्त अवर्णवाद करने से (२) अरिहन्त उपदेशित धर्म के अवर्णवाद करने (३) आचार्य उपाध्याय का अवर्णवाद करने से (४) चारों प्रकार के का अवर्णवाद करने से (५) तप और ब्रह्मचर्य के पालन से हुए देवो अवर्णवाद करने से

सम्यग्दर्शन का महत्त्व और लाभ-

(१) **सम्यग्दर्शन अंक है-** जैसे बिना अंक के बिन्दियों का महत्त्व नही, वैसे ही बिना सम्यग्दर्शन के समस्त क्रियाऐं बिना अक बिन्दिया है। कारण बिना सम्यक्त्व के सकाम निर्जरा नही होती बिना सकाम निर्जरा के एक भव का भ्रमण भी कम नहीं होता है इसीलिये कहा है-

न तद् ध्यान न तद् ज्ञानं न तच्छील न तद् व्रतम्
सम्यग्दर्शन हीनस्य, सर्व मेव निरर्थकम्।।

तत्त्वेत्ता आदि श्रीमद् योगी आनदधन जी ने भी कहा है-

"शुद्ध श्रद्धा बिन सर्व क्रिया करी, छार पर लीपणु तेह जाणो"

बिना सम्यग्दर्शन के चारित्र की प्राप्ति नही होती। शास्त्रकार फरमाते है 'नत्थि चरित्त सम्मत्त विहूण'[1] यही नही बिना सम्यग्दर्शन के ज्ञान भी नहीं होता है। कहा है 'ना दसणस्स नाणेण।'

(२) **सम्यग् दर्शन से पाप रूक जाते है-** पाप प्रत्याख्यान से रूकते है। किन्तु सम्यग्दर्शन मे यह वडी विशेपता है कि उसके उपलब्ध होते ही सवसे वडे पाप (मिथ्यादर्शन शल्य) का वन्ध होना,

---

१ उत्तरा २८/२९

त रूक जाता है। इसके साथ ही अन्य पापो का बन्ध भी कम हो ाता है। और बन्ध हल्का पडता है। जिसमे वह भी अनन्त संसार का ारण नही होता है। इसी अपेक्षा से ज्ञानी कहते है–

पम्मत्त दिट्ठी न करेइ पांव"[1] सम्यग्दर्शन से पापो मे प्रवृत्ति के परिणाम क जाने से फिर पापो का तीव्र बध (जैसा मिथ्या दृष्टि के होते हैं) नही ता है। कारण कहा है–

"समझु शंकु पाप से, अन समझु हर्षन्त।
वे लूका वे चीकणा, इण विधि कर्म बधत।।"[2]

एक अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि के पाप न बधने का कथन विशिष्ट म्यग् दृष्टि (वीतराग) की अपेक्षा से समझना उपयुक्त है कारण वहा ग भाव न होने से बध न होने की उसकी 'स्वरूपा रमण' वृति है। सरी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि की जयणा है। जयणा से कार्य करने से भी ाप बध नही होता है। कहा है–

"जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जय सए।
जय भुजतो भासतो, पाव कम्म न बधई।।"[3]

(३) **सम्यग्दर्शन से सच्चा सुख**– बिना सम्यग्दर्शन के तीन ाल मे सच्चा सुख नही मिल सकता।

सच्चा सुख दृष्टि मूढता हटने पर देहातीत दशा की अनुभूति होता है, जो सम्यग्दर्शन के बिना सभव नही है। सम्यग्दृष्टि होने र अलौकिक सुख की अनुभूति होने लगती है, इससे ससार के समग्र ौतिक सुख उसे तुच्छ और फीके लगने लगते है। तत्व रसिक कविवर ० बनारसीदास जी ने कहा है–

"भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट, चित्त भयो जिम शीतल चदन।
केलि करे शिव मारग मे जग माहि जिनेश्वर के लघु नन्दन ।।

१ आचाराग ३/२ २ वृहद अलोयणा से ३ दशवे ४/८

सत्य स्वभाव सदा जिनका, प्रगट्यो भवघात मिथ्यात्व निकन्द
शान्त दशा जिनकी पहिचान, करे कर जोरि बनारसी वन्द

सम्यग् दर्शनी मे समभाव नियमा से होता है और समभाव का सुख परम सुख है। कहा है–

"तन सुख मन सुख, राज सुख, सम्पत्ति सुख भी होय।
पर समता सुख परम सुख या सम और न कोय।।"

(४) **सम्यग्दर्शन दुर्गति के ताला लगा देता है**– सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेपर सप्त बोलो का बध नही होता–यथा (१) नरक गति, (२) तिर्यच गति, (३) स्त्री वेद, (४) नपुसक वेद, (५) भवन पति देव, (६) वाण व्यंतर देव व (७) ज्योतिषी देव। दिगम्बर धर्म की मान्यतानुसार तो इन सात के अतिरिक्त निम्न चार बोलो का भी बध नही होता है–

(१) अल्प आयु, (२) नीच कुल,(३) दरिद्री तथा (४) विकलेन्द्रिय। यदि सम्यग्दर्शन से पूर्व नरक या तिर्यच की आयु बांधी गयी हो तो वह समकित सहित मरता है तो प्रथम नरक से आगे नहीं जाता और तिर्यच मे भी उत्तम भोग भूमि मे पैदा होता है।[1] किन्तु श्वेताम्बर परम्परानुसार वह छठी नरक तक जा सकता है।[2]

(५) **सम्यग् दर्शन से अल्प धर्मकिया भी बहु फलदायक**–आगम में तामली तापस का वर्णन आता है। वह बडा तपस्वी एवं उत्कृष्ट क्रिया करने वाला था। किन्तु उसकी किया का फल सम्यग्दृष्टि की एक नवकारसी के फल के तुल्य भी नहीं बताया है। सम्यग् दर्शन के माध्यम से अनत भवो के कर्म एक भव मे ही क्षय हो जाते है। इसी कारण से सम्यग्दृष्टि अव्रती होते हुए भी वदनीय और मिथ्यादृष्टि सर्वव्रती होते हुए भी अवंदनीय कहा है–

१ चर्चा शतक, गाथा ८२ व छह ढाल ३ छद १४
२ भगवती सूत्र श २४/१।

वदनीय है सम्यग्दृष्टि, यद्यपि व्रत नही कोय।
निदनीय है मिथ्यादृष्टि, तद्यपि तपस्वी होय।।

(६) असम्यग् श्रुत भी सम्यग् और आश्रव मे भी संवर होना— शास्त्रकार कहते है –

"समिय तिमण्णमाणस्स समिया वा,
असमिया वा समिया होइ उवेहाए।"

अर्थात् सम्यक्त्व धारी आत्मा की भावना सम्यग् होती है, रण वह आत्मार्थी होता है, इसलिए उसे सम्यग् या असम्यग् कोई भी ा सम्यक् रूप से ही परिणत होती है।

इसके विपरीत मिथ्यादृष्टि हठाग्रही व मतार्थी होने से (कुश्रद्धा ने से) सम्यग् श्रुत भी असम्यग् परिणमता है। सम्यग् दृष्टि आश्रव मे सवर और मिथ्या दृष्टि सवर मे भी आश्रव का उपार्जन कर लेता है।

(७) सम्यग् दर्शन द्वीप समान शरणभूत है – जैसे पृथ्वी वो के लिए आधार है वैसे ही सभी जीवो के लिए शरणभूत, एकान्त तकर व रक्षक सम्यग् दर्शन है आगमकार कहते है–

बुज्झमतणाय पाणिय किच्चताण सकम्मुणा।
अघाति साहु ते दीव पति हे सा पवुच्चई।।[1]

अर्थात् मिथ्यात्व के प्रवाह मे बहते तथा अपने पाप कर्मों के रा कष्ट पाते प्राणियो के लिए सम्यग् दर्शन द्वीप के समान विश्राम थल है। तत्त्वज्ञो का कथन है कि सम्यग्दृष्टि से ही मोक्ष प्राप्त होता ।

(८) सम्यग् दर्शन से मुक्ति निश्चित – जिसने सम्यग् दर्शन ाप्त कर लिया, वह निश्चय मे मोक्ष पाता है।[2] सम्यग् दर्शन सहित अधिक से अधिक पन्द्रह भव मे सिद्धि अवश्य प्राप्त हो जाती है। जो

सूत्र कृताग १/८/२३
धर्म सग्रह अधिकार २/२१ टीका

सम्यग् दर्शन प्राप्त कर पुनः मिथ्यादृष्टि हो जाते है वे भी अधिक अधिक देशोन अर्द्ध–पुद्गल परावर्तनकाल मे (वैक्रिय अर्द्ध पुद्गल पराव मे जो सबसे बडा है) अवश्य मोक्ष प्राप्त करते है किन्तु बिना दर्शन के तीन काल में भी मुक्ति नही होती। शास्त्रकार कहते है-

"दसण भट्ठो भट्ठो, दंसण भट्ठस्स नत्थि निव्वाणं।
सिज्झति चरण रहिआ, दसण रहिआ न सिज्झति।।"

उपसंहार – अनमोल और दुर्लभ नर जीवन का सार दर्शन की प्राप्ति है। कारण सभी गुणो मे उत्तम व सभी धर्मों मे प्रधान है। शास्त्र कहते है–

" सम्यक्त्व रत्नान्न परं हि रत्नम्,
सम्यक्त्व मित्रान्न परं हि मित्रम्।
सम्यक्त्व बन्धु हि परं हि बन्धु,
सम्यक्त्व लाभान्न पर हि लाभ ।।"[1]

अर्थात् सम्यक्त्व रत्न सब रत्नो में श्रेष्ठ रत्न है, सम्यक्त्व मित्रो में श्रेष्ठ मित्र है, सम्यक्त्व सब बन्धुओ में श्रेष्ठ बन्धु है सम्यक्त्व लाभो में श्रेष्ठ लाभ है।

इसी प्रकार कहा गया है–

"न धम्म कज्जा परमत्थि कज्ज। न पाणि हिंसा परमं अकज्ज
"न पेम रागा परमत्थि बंधा। न बोहि लाभा परमत्थि लाभा

और भी कहा है–

सद्दर्शन महारत्नं, विश्व लौकेक भूषणम्।
मुक्ति पर्यंत कल्याण, दान दक्ष प्रकीर्तितम्।।[3]

१. सम्यक्त्व कोमुदी से।
२ गोतम कुलक।   3 श्री शुभचन्द्राचार्य।

अर्थ–सम्यग् दर्शन अनेक प्रकार के रत्नो मे महारत्न है, जो सर्वोत्तम है। समस्त लोक का आभूषण है। आत्मा को मुक्ति प्राप्त होने तक कल्याण मगल देने वाला चतुर दाता है।

आचार्य समन्तभद्र ने कहा है–" समस्त प्राणी जगत के लिए तीनो काल और तीनो लोक मे सम्यक्त्व के समान कोई श्रेय नही और मिथ्यात्व के समान कोई अश्रेय नही है।

अत भव्य प्राणियो के स्व–पर कल्याणार्थ सम्यग्दर्शन का सम्यग् स्वरूप भली भाति समझकर उसकी सम्यक् आराधना सतत करते रहना चाहिए।



३. सम्यक् चारित्र

" हमको कहना आता है, पर करना नही आता।
हमे बोलना आता है, पर चलना नही आता।।
दूसरो को साफ स्वच्छ रहने की सीख देने वालो,
यह कैसी विडम्बना है, खुद को साफ रहना नही आता।।"[1]

संसार मे तीन प्रकार के अधकार कहे हैं– मिथ्यात्व मोहनीय का, ज्ञानावरणीय का व चारित्र मोहनीय का। ये तीनो रत्न त्रय को आच्छादित करने वाले है। जो इनसे उन्मुक्त है वह उत्तम है। कहा है–

"मिच्छित मोहणिज्जा, नाणावरणिज्जा चरित्त मोहाओ।
तिविहत्तमा उम्मुक्का, तम्हा ते उत्तमा हुन्ति।।"[2]

ज्ञान दर्शन का स्वरूप समझने के पश्चात्, तदनुकूल प्रवृत्ति करना, उसे जीवन मे उतारना ही सम्यक चारित्र है। 'ज्ञानस्य फलं विरति' के अनुसार ज्ञान का फल त्याग है। कहा भी है–

"रजनी का भूपण इन्दु है, दिन का भूपण भान।
दास का भूपण भक्ति है, भक्ति का भूपण ज्ञान।।
ज्ञान का भूपण त्याग है, त्याग का भूपण ध्यान।
ध्यान का भूपण शान्तिपद, तुलसी अमल अदाग।।"

चरित्र मानव जीवन रूपी वृक्ष का सुन्दर पुष्प है।

---

१. स्वरचित पदो से।
२. आचार्य भद्रवाहु आवश्यक निर्युक्ति ११००।

चारित्र के ज्ञान व दर्शन दोनो सार्थक नही होते। एक कवि के
ो मे–

"पिजरा खुला पर फाखे नही खुली तो क्या ?
दीपक जला पर आखे बन्द रही तो क्या ?
पैर तो बहुत उठाये, पर गति नही तो क्या ?
करने की बाते तो बहुत की, पर कर्मठता नही तो क्या?"

शास्त्रकार कहते है–

"जाणतोऽवियतरिउ तरिउ, काइय जोग न जुजइ नईए।
सो बुज्झइ सोएण, एव नाणी चरण हीणो ।।"

अर्थात् जैसे कोई तैरना जानकर भी जल प्रवाह मे हाथ पाव न
ाये तो वह डूब जाता है। वैसे ही धर्म सिद्धान्तो को जानते हुये भी
कोई उनका आचरण न करे तो वह भी दुखो से मुक्त नही हो
ता। और भी कहा है–

"सुवहुपि सुयमहीय, कि काहि ती चरण विप्प हूणस्स।
अधस्स जल पलित्ता, दीव–सय सहस्स कोडीवि।।"

अर्थात् जैसे अधे के आगे जलते हुये सैकडो, हजारो एव
डो दीपक भी उसके लिये व्यर्थ होते है वैसे ही चारित्र का पालन न
 वाले के लिये ज्ञान का भडार व्यर्थ हो जाता है। कहा है–'आचार
न पुनन्ति वेदा' अर्थात् आचारहीन को वेद (शास्त्र) भी पवित्र नही
सकते। धर्म के बिना नर पशु तुल्य है।

महान योगी भर्तरि ने कहा है–

"आहार निद्रा भय मैथुन च, सामान्य मेतत् पशुभिर्नराणाम्।
तत्रापि धर्मो अधिको विशेषो, धर्मेण हीना पशुभि समाना।।

कोई धर्म की चर्चा तो खूब करे, पर करे कुछ नही, तो क्या

कल्याण हो सकता है ? कदापि नही। इसलिये कहा है-

"चर्चा ही चर्चा करे, धारण करे न कोय।
धर्म बिचारा क्या करे, धारे ही सुख होय।।"

तत्त्वज्ञो ने समग्र लोक का सार धर्म, धर्म का सार
का सार सयम (चारित्र) और सयम का सार निर्वाण कहा है-

लोगस्स सार धम्मो, पिय नाण सारय बिति।
नाण सार सजम सजम सार च निव्वाण।[1]

समग्र द्वादशाग रूप विशाल तत्त्व ज्ञान का सार भी
बतलाया है। कहा है – "अगाण कि सारो ?" (उत्तर) आयारो
इस प्रकार सुस्पष्ट है कि ज्ञान व दर्शन आराधना
सयम है—चारित्र है। इस सदर्भ मे लेखक द्वारा लिखा यह
मननीय है—

"अनपढ से पढता भला पढता से भणवान।[3]
भणता से गुणता[4] भला, जो हो आचरवान।।"

यदि 'साक्षर' होकर भी सदाचरण की उसमे सुवास
वह साक्षरा से पलट कर 'राक्षसा' हो जाता है। इसके विपरीत
से साक्षर 'सरस' बन जाता है जो विपरीत दिशाओ मे, पलट
सरस ही रहता है। कहा है—

सरसो विपरीत श्चेत् सरसत्त्व न मुञ्चति।
साक्षरा विपरीताश्चेत्, राक्षसा एव केवलम्।।

आज शिक्षा प्रसार बहुत हुआ है, किन्तु सद्—
चारित्र बनाने वाली नैतिक शिक्षा के अभाव मे शिक्षितो में अशि

१. आचाराग की निर्युक्ति २४४
२. आचाराग की निर्युक्ति
३. समझाने वाला
४. चितन करने वाला

-ेक उद्दण्डता, उच्छृंखलता व अनुशासनहीनता देखने को मिलती

शिक्षा के साथ सदाचार के महत्व को समझने–समझाने हेतु एक पौराणिक प्रसग प्रस्तुत किया जाता है–

एक बार गुरु द्रोणाचार्य ने कौरव – पाण्डवो को जब वे पढते ठ दिया–'सत्य वद, क्षम चर।' दूसरे दिन सभी ने यह पाठ सुना पर युधिष्ठिर चुप रहे। गुरु ने उपालम्भ दिया कि तुम सबसे बडे और तुमने ही पाठ याद नही किया ? दूसरे दिन भी युधिष्ठिर का रात्मक उत्तर सुन, गुरु ने उनको थप्पड मार दिया। कुछ ही दिन धृतराष्ट्र शाला का निरीक्षण करने आये। सबने पाठ सुनाया, किन्तु ष्ठिर ने उस पाठ को आधा ही सुनाया। पूछने पर बोले, मुझे यह अभी तक आधा ही याद हो पाया है। तब धृतराष्ट्र उपालम्भ देते बोले–"तुम पाण्डव कुल तिलक हो, तुमसे बडी आशाये है।" ष्ठिर ने उत्तर दिया–"मै मात्र वाणी से याद नही करता। जीवन मे रने को पाठ याद करना मानता हू। थप्पड खाकर भी क्रोध नही ा, अत आधा पाठ याद हुआ मानता हू।" सभी युधिष्ठिर की इस से बडे प्रभावित हुये। इस प्रकार ज्ञान व शिक्षा आचरण से ही ाभित होते है।

अर्थ एव व्याख्या– चारित्र शब्द 'चर्' धातु से बना है। चर का है गति करना। आत्मा का विभाव से स्वभाव की ओर गति करना त्र है। प्राकृत मे चारित्र के लिये 'चयरित्त' शब्द का प्रयोग मिलता है नका तात्पर्य भी विभाव रूप चय से आत्मा को खाली करना है। ामकार कहते है–

'चयरस्स रित्तिकरण चरित्त।'[1] अर्थात् कर्म चय (समूह) से आत्मा को रिक्त करने का साधन ही चारित्र है।

तरा २८/३२ व निशीथ चूर्णि भाष्य ४६

अथवा 'चर्यते प्राप्यते मोक्षोऽने नेति चारित्राम्।'[1] अर्थात् जि द्वारा मोक्ष प्राप्त की जावे वह चारित्र है अथवा 'सर्व सावद्य यो त्यागश्चरित्रभिष्यते।'[2] अर्थात् सभी पापवृत्तियो के त्याग का नाम है। इसी कथन को इस प्रकार भी कहा गया है–' क्रियानिवृ चरित्रम्।'[3] पचाध्यायी श्लोक स ४१२–४२३ मे कहा गया है–' की प्रतीति के अनुसार क्रिया करना चरण या आचरण कहलाता अर्थात् मन, वचन व काया से शुभ कर्मों मे प्रवृत्ति करना परम चारित्र

तात्पर्य यह है कि पाप व सावद्य प्रवृत्ति का त्याग कर मोक्ष जो सयम मे शुभ या शुद्ध प्रवृत्ति की जाती है, उसी का नाम चारित्र शास्त्रकार इसी बात को इस प्रकार सुस्पष्ट करते हुये कहते है–

"एगेओ नियत्तेण, एगेओ पवत्तेणं।
असजमे नियत्ति च, सजमेय पवत्तेण।।[4]

चारित्र के पर्यायवाची नाम– सयम, व्रत, महाव्रत, विर स्वरूप स्थिरता, तत्त्व रमणता, निश्चय तत्त्वानुभूति, अनासगत स्वरूपास्वादन, शुद्धोपयोग, समता, वीतरागता, स्वभाव आराधना आ

चारित्र के भेद :

चारित्र के मुख्यत दो भेद है–

१. व्यवहार चारित्र : मर्यादापूर्वक मन व इन्द्रियो को, प प्रवृत्ति से रोक कर ज्ञान, सयम, तप आदि मे लगाना, अथवा निश्च धर्म के साथ होने वाली पुण्य परिणति रूप बाह्य क्रिया, जैसे महाव्र समिति, गुप्ति आदि की पालना करना।

२. निश्चय चारित्र : 'चारित्त सम भावो ।'[5] अर्थात् समभावों अवस्थित होने का नाम निश्चय चारित्र है। अथवा 'स्वरूप चरणं चारित्र

---

१ उत्तरा २८/२ २. योग शास्त्र
३ ज्ञानार्णव पृ ५९ ४ उत्तरा ३१/२। ५ पचास्तिकाय १०७ ।

अवस्थित।'[1] अर्थात् स्वरूप मे, शुद्ध स्वभाव मे लीन होना चारित्र है अथवा आत्मा का आत्मा मे आत्मा के लिये तन्मय होना चारित्र है।[2]

निश्चय चारित्र के अनुसार कषाय व योगो की चचलता निवृत्ति ही चारित्र है। जितने जितने अशो मे कषाय व योगो की चंचल मे प्रवृत्ति होती है उतने उतने अशो मे चारित्र का अभाव होता है।

दूसरे प्रकार से दो भेद :

१. **द्रव्य चारित्र :** 'अणुवओगो दव्व।'[3] अर्थात् बिंना भाव के उपयोग शून्य चारित्रिक क्रियाओ का पालन करना। जैसे द्रव्यलि मुनि होते है। अथवा भाव चारित्र की सिद्धि हेतु, साधन रूप जो क्रि की जावे। जैसे सावद्य क्रिया का त्याग आदि ।

२ **भाव चारित्र :** उपयोग सहित अशुभ भावो का त्याग व मोक्ष प्राप्ति मे सहायक शुद्ध या अशुद्ध भावो मे अवस्थित होना।

तीसरी तरह से दो भेद ·

चारित्त धम्मा दुविहा पणत्ता, तंजहा—अणगारेवा आगारेवा अर्थात् (१) अणगार धर्म रूप व (२) आगार रूप। पच महाव्रत रूप मु धर्म को अणगार और बारह व्रत रूप श्रावक धर्म को आगार धर्म कह है। अणगार धर्म को सकल और आगार धर्म को विकल चारित्र भी कह है। 'आगार का अर्थ होते है गृह युक्त होना या छूट रखना।

चौथी तरह से दो भेद :

(१) सराग चारित्र व (२) वीतराग चारित्र।

चारित्र के पांच भेद :

१ **सामायिक चारित्र .** 'सम आयिक इति सामायिक' अर्था

---

१ प्रवचन सार गा ८। २ समण सुत्तर २६८।
३ अनुयोग द्वारा सू १३ ४ ठाणाग २, उ १, सू ८२

जिसमे समभाव आवे। सामायिक में तीन शब्द है– सम+ आय+ इक। सम अर्थात् रागद्वेष रहित, आय अर्थात् ज्ञान दर्शन चारित्र आवे और इक अर्थात् मोक्ष रूप एक फल प्राप्त होवे। अथवा समय आत्मा का नाम है जिससे आत्मा भाव में स्थिर हो वह सामायिक है। अथवा विषय, कषाय, आरम्भ, परिग्रह रूप विषम भावो की निवृत्ति व ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप समभाव की प्राप्ति करावे– ऐसी धर्म साधना में प्रवृत्ति करने का नाम सामायिक है। कहा भी है–

"समता सर्व भूतेषु, संयम शुभ भावना।
आर्त्त रौद्र परित्यागस्, तद्धि सामायिकं व्रतम्।।"

सामायिक की व्याख्या एक विद्वान् द्वारा इस प्रकार भी की गयी है–

"समता भाव धारणा करे, जे देख निज रूप।
सामायिक तेने कहे, जे सुख शान्ति स्वरूप।।"

यह सामायिक दो प्रकार की होती है। एक यावज्जीवन जो ..५ के होती है। दूसरी मर्यादित काल की, जो श्रावकगण करते है। सामायिक का जघन्य काल एक मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनट का होता है। दिगम्बर परम्परा मे भी सामायिक नित्य करने का विधान है। कहा भी है–

"धर उर समता भाव, नित्य सामायिक करिये।
पर्व चतुष्टय[1] मांहि, पाप तज, पौषध करिये।।"[2]

द्रव्य एव भाव से शुद्ध सामायिक (३२ दोषो को टालकर) करने का बडा महत्त्व है।

सामायिक चारित्र के दो भेद है–

(i) इत्वरकालिक (थोडे समय की) व (ii) यावज्जीवन (सदा के लिये)।

---

१ दो अष्टमी व दो चतुर्दशी २ छह ढाला

सामायिक चारित्र के विषय मे विशेष जानकारी 'सामायिक' मे पढें।

(२) छेदोपस्थापनीय चारित्र : यह प्रथम व अन्तिम तीर्थंकरो के मे ही होता है। इसमे पूर्व दीक्षा पर्याय का छेदन कर महाव्रतो स्थापन करते है। वर्तमान मे इसे बडी दीक्षा भी कहते है। जो लिक सूत्र के चौथे अध्ययन 'षड जीवनी' के पाठ से दिया जाता के भी दो भेद है– (क) **सातिचार**–मूल गुणो का घात करने पर वे। (ख) **निरतिचार**– छोटी दीक्षा वालो को बडी दीक्षा देवे व पूर्व र के साधु वर्तमान तीर्थंकर के शासन मे आने पर ।

(३) परिहार विशुद्ध चारित्र . यह कर्मों को विशेष रूप से र कर आत्मा को शुद्ध करने की प्रक्रिया विशेष है। नौ मुनि इसकी । एक साथ करते है, चार वैयावृत्य (सेवा) करते है, और एक चार्य होता है, जिसे सब वन्दना करते है। इसमे १८ माह तक की जाती है। प्रथम ६ माह बाद वैयावृत्य वाले तप करने लगते तप वाले वैयावृत्य करने लगते है। किन्तु वाचनाचार्य वही रहता र १२ माह बाद वाचनाचार्य ६ माह तक तप करता है। शेष सात त्य व एक वाचनाचार्य बनता है। इस प्रकार कुल १८ माह तक यह लता है। तप करने वाले, जघन्य उपवास व उत्कृष्ट पचोला कर आयंबिल से करते है वाचनाचार्य व वैयावृत्य करने वाले नित्य भी हो सकते है। किन्तु इनका भोजन भी आयबिल युक्त होता है। घन्य नव पूर्व की आचार वत्थू के ज्ञाता तथा २० वर्ष की कम से दीक्षा व आयु २९ वर्ष से कम न हो, वे ही पालन करते है। यह त्र तीर्थंकर प्रभु के पास, या उनसे दीक्षित के पास ही अंगीकार । जाता है।

(४) सूक्ष्म सपराय चारित्र : जिन अणगारो मे मात्र किंचित मात्र) सज्वलन का लोभ शेष हो, वे इस चारित्र को उपलब्ध होते

हैं। यह भी दो प्रकार का होता है– (i) सक्लिश्यमान व (ii) विशुद्ध

(५) यथाख्यात चारित्र : जो पूर्ण वीतराग हो चुके है। ग्यारहवें गुण स्थान से चौदहवे गुण स्थान तक होता है।

उपरोक्त पांच चारित्र मे से अभी इस क्षेत्र मे सामायिक छेदोपस्थापनीय– ये दो चारित्र ही मिलते है।

चारित्र के तेरह भेद :

पांच समिति, तीन गुप्ति व पाच महाव्रत की अपेक्षा से, त भेद भी चारित्र के होते हैं। उत्तम परिणामों से सयम, पालनार्थ नि एव निर्दोष प्रवृति करने को 'समिति' कहते है। अशुभ प्रवृत्तियो वचन, काया की) को रोक कर संसार के कारणो से आत्मा की स प्रकार से रक्षा करने को 'गुप्ति' कहते है।

पाच समिति :

१. ईर्या समिति : कार्य होने पर विवेकपूर्वक गमन करना दूसरे जीवो को किसी प्रकार की हानि न हो, इस प्रकार उपयोग पू चलना। अंग्रेजी कहांवत है –

Look before leap and think before speak.

अर्थात् कदम रखने से पूर्व देखो व बोलने से पूर्व सोचो।

२. भाषा समिति : आवश्यक होने पर निरवद्य (निर्दोष) व बोलना।

३. एषणा समिति : बियालीस दोष टालकर निर्दोष भिक्षा ग्रहण करना।

४. आदान भाण्ड मात्र निक्षेपण समिति : संयम में सहा उपकरणों को लेने, रखने व पडिलेहण मे और प्रमार्जन मे सदप्र (विवेकपूर्वक) करना।

५ उच्चार प्रश्रवण खेल सिघाण जल परिस्थापनिका समिति· दस दोष टाल कर परठने योग्य बडी नीत, लघु नीत, कफ, श्लेष्म, जल आदि को, स्थडिल के दस दोष टालकर, निर्वद्य स्थान पर छकाया की विराधना टालते हुए परठना।

तीन गुप्ति :

१. मन गुप्ति : मन को अशुभ ध्यान से रोककर, निरवद्य शुभ या शुद्ध तत्त्व चितन मे लगाना। इसकी पालना सर्वाधिक कठिन है। योगी आनंदघनजी ने भ० कुथु जिनराजजी की स्तुति करते कहा है–

'कुथु जिन, मनडो कबहु न बाजे रे।।
ज्यो–ज्यो जतन करीके राखू, त्यो–त्यो अधिको भाजे।।कुंथु
रजनी वाशर, बसती उजड, गयन पयाले जाय।
साप खाय ने, मुखडो थोथो, ए उखाणु न्याय।। कुथु
मै जाणु, ए लिग नपुसक, सकल मरद ने ठेले।
बीजी बाता, समरथ छै पिण, इण ने कोई न ठेले।।कुथु

मन गुप्ति साध लेने पर,साधना मे निश्चित सफलता मिलती है। कहा भी है–

"तन के जोगी सब हुए, मन से बिरला कोय।
जो मन से जोगी हुए, सहज ही सब सिद्ध होय।।"

भ० कबीर ने भी मन के विषय में ऐसा ही कहा है–

"कबीरा मनहु गयद है, अकुश दे दे राख।
विष की बेला परिहरे, अमृत का फल चाख।।"

२ वचन गुप्ति : वाणी को सावद्य एव सदोष प्रयोग से रोकना। वचन गुप्ति का सम्बन्ध जिह्वा से है, जिसको जीतना व अकुश रखना, अन्य इन्द्रियो से अधिक कठिन है। कारण यह एक होते हुए भी इसके कार्य दो है–बोलना और खाना। साधक का रसना इन्द्रिय पर नियन्त्रण

होना बहुत आवश्यक है। अधिकाश झगडे, इस इन्द्रिय पर नियन्त्रण न होने से ही होते है। कहा है–

" रहिमन जिह्वा बावरी, कह गई स्वर्ग पताल।
आपहु तो कह भीतर गई, जूती खात कपाल।।"

अत जहा तक संभव हो मौन रख वचन गुप्ति की पालना की जाय। मौन ईश्वरीय भाषा है।

साधक को रसना का सही उपयोग करना चाहिये–"बोलबो न सीख्यो तो सारी सीख्यो गयो धूल मे।" जो भी बोला जाय,वह हृदय मे तोल–तोल कर बोलना चाहिए। कवि कहता है–

"बोली बोल अमोल है, बोल सके तो बोल।
पहले हृदय तोल कर, पाछे बाहर खोल।।

३ **काया गुप्ति** · काया को आश्रव प्रवृत्ति से रोक,सवर मे अवस्थित करना। साधक के लिए काया पर नियत्रण भी आवश्यक है साधक की भावना रहती है–

" इन्द्रियो के न घोडे, विषयो में अडें।
जो अडे भी तो, सयम के कोडे पडे।।

तन के रथ को, सुपथ पर चलाते चले।
सिद्ध अर्हन्त मे मन रमाते चले।।"

पांच महाव्रत ·

(१) अहिसा (२) सत्य (३) अचौर्य (४) ब्रह्मचर्य (५) अपरिग्रह। इन पांच महाव्रनो का तीन करण, तीन योग से पूर्ण पालन करना प्रत्येक मुनि के लिए अनिवार्य है। श्रावक इन्हे अंशत पालन करता है, जो अणुव्रत कहलाते है।

१ बिना चरित्र के ज्ञान शीशे की आख है– चारित्र के बिना, ज्ञान शोभा नही देता। मात्र ज्ञान से कोई पण्डित नही होता। कहा है–

"पढे पढावे चितवे, व्यसनी मूरख लोय।
जे जीवन मे आचरे, ते जन पण्डित होय।।"

अत ज्ञान पढ लेना, या सुन लेना मात्र ही पर्याप्त नही है, जब तक उस पर चले नही। इस सदर्भ मे एक रोचक दृष्टान्त है। एक किसान को दूर पहाड पर स्थित, देवी की मूर्ति के दर्शनार्थ जाना था। वह प्रात तीन बजे उठकर, लालटेन से चल पडा। दूरी व चढाई अधिक होने से, प्रात शीघ्र रवाना होना था। वह कुछ दूर ही गया कि भयानक अधकार से घबराकर लौट पडा। तभी उसे एक दूसरा व्यक्ति, हाथ मे दीपक लिए, जाता मिला। उसने लौटने का कारण पूछा, तो बताया कि तीन कदम से आगे, कुछ दीखता नही,घोर अधेरा है, अत आगे नही जा रहा हूँ। दूसरे व्यक्ति ने कहा तुम आगे बढो तो अधकार भागता जायेगा। जब तीन कदम का मार्ग दिख रहा है, तो चलते चलो, आगे रास्ता दिखता जायेगा। मेरे पास तो मात्र दीपक है, जिसमे मै काफी दूरी तय कर आ गया हूँ। किसान ने साहस किया और देवी के मन्दिर पर पहुँच गया। बस, इसी तरह ज्ञान को लालटेन के प्रकाश मे चारित्र रूपी कदम, आगे बढाना चाहिए।

इसी विषय मे, एक अन्य दृष्टान्त भी मननीय है। एक सेठ के घर मे चोर आ गए। सेठानी ने सेठ से कहा–'चोर आ गए है।' सेठ बोला– 'जानता हूँ।' चोरो ने तिजोरी खोल ली, तो सेठानी ने फिर टोका, तो सेठ पुन· बोला, 'जानता हूँ।' चोरो ने माल निकाल पोट बाध ली। सेठानी ने फिर सेठ को सावधान किया तो सेठ बोला–'जानता हूँ।' चोर माल लेकर रवाना होने लगे तो सेठानी ने फिर सेठ को टोका। सेठ बोला – 'जानता हू।' इस पर सेठानी झल्ला उठी और बोली–

"जाणु जाणु कर रहा, माल गयो अति दूर।
सेठानी कहे सेठ से, थाका जाणपणा मे धूल।।"

वस्तुत इस प्रकार, मात्र ज्ञान, बिना क्रिया के होना सार्थक नही होता । कहा भी है–

"No knowledge is power, unless put into action"

अर्थात् ज्ञान जब तक क्रिया मे न आवे, वह सशक्त नही होता। नीति मे भी कहा है–" क्रिया विहीना खर् वद् वहन्ति" अर्थात् बिना क्रिया के ज्ञान गधे के समान बोझा ढोना है।

२ **पापो से मुक्ति :** अठारह पापो मे, सतरह पाप (मिथ्या दर्शन शल्य को छोड) चारित्र से रूकते है। अत बिना चारित्र के इन्सान बिना छत का मकान है जिसमे वह आनन्द व शान्ति से नही रह सकता है।

३ **चारित्र बल सर्वश्रेष्ठ है** आचार का बिदु विचारो के सिधु से अधिक प्रभावी होता है। आचार के कण के आगे, विचारों का मण भी नगण्य है। चक्रवर्ती सम्राट व देवो के इन्द्र भी, एक सामान्य मुनि को चारित्र के कारण ही वंदन करते है। स्वामी विवेकानन्द अमेरिका मे गये, तो उनकी वेशभूषा देख वहा के प्रबुद्ध नागरिक हँसने लगे, किन्तु वे चारित्रनिष्ठ थे। उन्होने उनसे कहा–"तुम्हारी सस्कृति दर्जी सीता है, जबकि हमारी सस्कृति का निर्माण चारित्र करता है।" स्वामीजी के आत्मबल से पूरित कहे गये शब्दो का उन पर जादू सा प्रभाव पडा और वे स्वामी जी के भक्त हो गए।

इसी प्रकार म० गॉधी जब लदन मे पढते थे, तो एक पादरी उन्हें इसाई बनाने की नीयत से नित्य भोजन पर बुलाता। वह गॉधीजी के लिए, अलग शाकाहारी भोजन बनवाता। पादरी के बच्चो ने एक दिन, गॉधीजी से पूछा–"आप मॉस नही खाते ?' गॉधीजी ने अहिसा के महत्व को समझाया। उनके चारित्र का प्रभाव बच्चो पर पडा, तो उन्होने

सि खाना छोड दिया। इस पर पादरी घबरा गया और गॉधीजी को ना बद कर दिया। पाश्चात्य सस्कृति मे भी चारित्र की शक्ति को नम माना है। कहा है–

When wealth is lost, nothing is lost
When Health is lost, something is lost,
But when character is lost, everything is lost.

अर्थात् धन गया तो कुछ नही गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ किन्तु चारित्र गया तो सब कुछ गया।

आचार मे बडी शक्ति होती है। आचारनिष्ठ व्यक्ति बैठा रहे तो उसका प्रभाव पडे बिना नही रहता। कहा है–

"आचार विचार का द्योतक है, चाहे वह कुछ भी कहे नही।
घनपटल बीच रह कर भी रवि, चलने मे पीछे रहे नही ।।"

चारित्राष्टक मे प० उदय मुनि जी म सा ने चारित्र की श्रेष्ठता न पदो से सुस्पष्ट की है–

"वनेषु नन्दन श्रेष्ठ, ब्रह्मचर्य व्रत व्रते।
निरवद्य वच सत्य, तथा चारित्रमुत्तमम्।"

(जैसे वनो मे नदन वन, व्रतो मे ब्रह्मचर्य, वचनो मे निर्दोष सत्य न श्रेष्ठ है वैसे ही सभी साधनाओ मे चारित्र उत्तम है)"

कल्प वृक्षोऽस्ति वृक्षेषु श्रेष्ठ प्राणिषु मानव ।
तद्वत् सर्वेषु लोकेषु, चारित्रमत्तुम स्मृतम्।।"

(जैसे सभी वृक्षो मे कल्पवृक्ष और प्राणीमात्र मे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ ना गया है वैसे ही तीनो लोको मे चारित्र सर्वोत्तम है।)

"आत्मन शुद्धि करण, दोष ध्वान्त निवारकम्।
कर्म धुलि हर प्रोस्तमक्ष्य सुखदायकम्।।"

(यह चारित्र आत्मा की शुद्धि करने वाला है। दे
अधकार को दूर करने वाला है। कर्म रूपी धूल को दूर करने
और अक्षय सुख का दाता है)

४ **चारित्र सर्वश्रेष्ठ आभूषण है** : चारित्र से बढ़क
आभूषण नही है। कहा है–

"सत्यैक भूषणा वाणी, विद्या विरति भूषणा।
धर्मैक भूषणा मूर्ति, लक्ष्मी सद्दान भूषणा।।"

उक्त चारो भूषण चारित्र रूपी महाभूषण के ही अभिन्न

५ **चारित्र के बिना सद्गति व मोक्ष नही** : बिना
चारित्र की अराधना के सद्गति तीन काल मे भी सम्भव न
आगमकार कहते है–

"जहा खरो चदन भारवाही, भारस्स भागी न हु चंदन
एव खुणाणी चरणेणाहीणो, णाणस्स भागी न हु सग्ग

अर्थ – जिस तरह चदन को ढोने वाला गधा भार
भागीदार है, चन्दन का नही, उसी प्रकार चारित्र के अभाव मे
ज्ञान का ही भार वहन करता है, सुगति को प्राप्त नही करता।
के बिना महाज्ञानी (चौदह पूर्वधर) भी ससार मे गोता खाते है औ
निगोद तक मे जा पहुँचते है। कहा है–

"चरण गुण विप्प हीणो, वुढ्ड्इ सुबुहु पि जाणतो।।"[2]
अर्थात् बहुशास्त्र ज्ञाता भी, चारित्र विना ससार समुद्र
जाता है।

उपसंहार : व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के उत्थान के लिए
की बडी आवश्यकता है। आज ससार मे जो अशान्ति, युद्ध क

१ विशेषावश्यक भाष्य गाथा ११५८ २ आवश्यक निर्युक्ति ६७

ब, रोग अनैतिकता आदि बढ रहे है, उन सबका मूल कारण चारित्र ा अभाव और अनैतिकता को बढावा है। सर्वत्र सुख शान्ति के लिए, ारित्र पर ध्यान देना, बहुत आवश्यक है। कविवर रहीम ने चारित्र को नी की उपमा देकर कहा है–

"रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गए न उबरे, मोती मानस चून ।।'

संत कबीर ने चारित्र को गुरु की उपमा देतें हुए कहा है –

"करनी करे सो पूत हमारा, कथनी करे सो नाती।
रहणी रहे सो गुरु हमारा, हम रहणी के साथी।।"

अन्त मे भ. महावीर ने जो एक बडी महत्वपूर्ण बात ज्ञान और चारित्र के विषय मे कही है, वह उल्लेखित कर विषय को पूर्ण किया जाता है। जब भगवान से ज्ञान और क्रिया की आराधना के विषय मे पूछा गया तो प्रभु ने फरमाया–"विन्नाणे समागमे धम्मसाहुण मिच्छिउ[१] अर्थात् धर्म की सम्यक् उपलब्धि हेतु विज्ञान और चारित्र का समन्वय आवश्यक है। कारण बिना ज्ञान, मात्र क्रिया अन्धी व जड है और बिना क्रिया (चारित्र) का ज्ञान शैतान है। ससार रूप अटवी में जहाँ पग–पग पर विषय कषाय की आग जल रही है, उससे सकुशल बाहर निकल, मुक्ति प्राप्ति के लिए ज्ञान रूपी नेत्रों के साथ चारित्र रूपी चरणों को गति देनी होगी। यही मोक्ष का शाश्वत सम्यक् मार्ग है। अत मे–

"शब्दो को सदेश नही अब, जीवन को सदेश बनाओ।
जो बोलो सो करो स्वयं मे, जीवन की गरिमा को पाओ।।
पानी पानी कहने से क्या, प्यास बुझी है कभी किसी की।
जो पीता है ठंडा पानी, प्यास मिटी है सदा उसी की।।[२]

---

१ उत्तरा २३/३१ २ उपाध्याय अमर मुनि ।

४. सम्यक् तप

"व्याकरण से किसी की भूख नहीं मिटती।
काव्य रस से किसी की प्यास नही बुझती।।
सिर्फ शास्त्र वान्चन से किसी का उद्धार नही होता।
बिना तप किए कर्मों का सर्वथा नाश नही होता।।"

विश्व मे दो प्रकार की विचारधाराए है–

(१) **भौतिकवादी**– अनात्मवादी जो मात्र पंचभूत को मानती है। आत्मा, मोक्ष कर्म आदि कुछ नही। उनका मन्तव्य है–

"यावद्जीवेद् सुखम् जीवते, ऋण कृत्वा घृतं पीवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य, पुनर्जन्मः कुतः।।[1]

अर्थात्– जब तक जीओ सुख से जीओ। ऋण करके घृ पीओ। यह शरीर भस्म हो जाता है, पुनर्जन्म नही होता। ये स्वर्ग नर आदि भी नही मानते। इनका कथन है–

"नही कोई देखा आवता, नही कोई देखा जात।
स्वर्ग, नरक और मोक्ष की, गोलमोल है बात।।"

किन्तु यह विचारधारा आत्मोत्थान की नही, पतन की है, ह्रास की है और नास्तिकों की है।

(२) **आध्यात्मवादी**– जो कर्म, आत्मा, स्वर्ग, नरक, मोक्ष आदि को मानकर राग से विराग की ओर, भोग से त्याग की ओर तथा भुक्ति

---

१ चार्वाक मत।

मुक्ति की ओर अग्रसर होने की सद्प्रेरणा देती है। इसके मुख्य चार नम्बन है– ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप। यहाँ तप के विषय में कथन या जाता है।

का स्वरूपः

तप धर्म का उत्कृष्ट अग है। शास्त्रकार कहते है–
"धम्मो मगलमुक्किट्ठ, अहिंसा सजमो तवो।"[1]

अर्थात् अहिंसा, सयम व तप रूप धर्म उत्कृष्ट मगल है। जीवन तेजस ही मुख्य तत्त्व है जिसकी उपलब्धि का मुख्य साधन तप है। । रहित जीवन बुझे दीपकवत् निष्प्राण होता है। वैदिक ग्रंथों में भी हा है–"तपसा वै लोके जयन्ति।" अर्थात् तप से तेजस्वी बन मनुष्य कि मे विजयश्री, समृद्धि प्राप्त करता है। अत तप, जीवन का, धर्म का, स्कृति का और समग्र विश्व का मूलभूत प्राण है। यही कारण है कि भी धर्मो मे तप का विधान किसी न किसी रूप मे मिलता है।

तप का अर्थ है तपाना । जो आत्मा रूपी स्वर्ण को तपाकर कर्म पी मैल से रहित बना शुद्ध कुन्दन बना दे, आत्मा से परमात्मा बना दे, से तप कहते है।

प की व्याख्या :

(i) "इच्छा निरोधस्तप।"[2] अर्थात् स्वेच्छा से, समभाव पूर्वक वेक से इच्छाओ को विविध विषयो से रोकना तप है। इसके अनुसार ात्र भोजन त्याग ही तप नही । भोजन के प्रति रही आसक्ति भी हटनी ाहिए।

वैदिक परम्परा मे एक चन्द्रायण व्रत होता है। इसमे प्रथम दिन एक ग्रास, दूसरे दिन दो ग्रास इस तरह चन्द्रकला जो शुक्ल पक्ष मे

---

१ दशवै अ १ गा १ ।
२. तत्त्वार्थ सूत्र

बढती है वैसे ही एक एक ग्रास बढाया जाता है। फिर कृष्ण पक्ष मे च कला घटने की तरह एक–एक ग्रास नित्य घटाया जाता है। एक पंडि ने एक भक्त को यह व्रत कराया। उसे प्रथम दिन एक ग्रास ही लेना थ अत. पत्नी को चूरमे गें खूब घृत डालकर, एक बडा लड्डू बना देने क कहा । वह भोजन पर बडा आसक्त था। अत. पूरा लड्डू मुहँ में र धीरे–धीरे खाने लगा। कुछ देर में प्यास लगी। अब लड्डू निकाले त दूसरा ग्रास हो जावे। अत पूछने हेतु पडितजी के पास भागा। पंडित व सभी सभासदों ने उसे मुहँ मे लड्डू भरा देख आश्चर्य किया। उस आते ही इशारे से पूछा–पानी कैसे पीउँ ? पंडित ने कहा–तुमने तो ए ग्रास मे ही बहुत खा लिया । यह व्रत नही है। अब खाना पीना ज चाहो, जितनी बार चाहो, खाओ पीओ। सारांश यह है कि ऐसा व्र करना भी व्रत की कोटि मे नहीं आता जहॉ भोजन में विशेष आसक्ति ह और इच्छा का निरोध न हो।

एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है। एक सेठ था, वह तप क अनुरागी था पर स्वय से तपस्या नही होती थी। उसने संवत्सरी क स्वय ने तो उपवास नही किया, परन्तु अपने नौकर को उपवास क दिया। दिन तो नौकर ने किसी तरह इधर–उधर की हलचल में पूरा क लिया, पर रात्रि को तारे गिनने लगा। प्रभात वेला मे एक बहिन ससुरा जा रही थी। वह माता–पिता से विदा होते रो रही थी। नौकर जो भू से बेहाल था, बोल पडा जरूर कोई उपवास करने वाला मर गया है इस तरह तप करने या कराने वाले उपहास पात्र बन जाते है त निर्जरा के बजाय कभी–कभी कर्म बंध भी कर लेते है।

(ii) "तप्यंते कर्माणिमला निवार्येन तत् तप·।" अर्थात् जो क मल को तपा कर आत्मा से अलग कर दे वह तप है। अन्यत्र भी कह है "तप्यते अप्ट कर्म इति तप ।"[१]

१ आ मलयगिरी कृत आवश्यक सूत्र की टीका खण्ड २ अ१ ।

(iii) श्री जिनदास गणी के अनुसार "तप्यंते अणेण पाव कम्म ति तपो"[1] अर्थात जिस साधना से पाप कर्म तप्त हो जाते है उसे तप हते है।

(iv) -जो कषाय विषय को घटावे वह तप है। कहा है–

"कषाय विषयाहारो त्यागो, यत्र विधीयते।
उपवासो स विज्ञेय, शेष लघन कं विदु[2]।।"

अर्थात् जहा कषाय, विषय व आहार का त्याग हो वह उपवास , शेष तो लघन मात्र है।

(v) विवेक से इन्द्रियादि दमन कर्म क्षय हेतु करे, वह तप है। हा है–"साहिणे चयइत्ति तवो" अर्थात् भोगोपभोग की वस्तुओ के प्राप्त ने पर स्वेच्छा से त्याग करे, वह तप है।

तप को भलीभाति समझने हेतु तीन शब्दो पर ध्यान देना ावश्यक है– तप, ताप व सताप। जो तप के नाम पर अज्ञान व कषाय स्वय को व दूसरो को क्लेशित करे, वह ताप है। जो स्वार्थ या मोह , अपमान आदि से शारीरिक कष्ट सहे वह संताप है। जैसे चक्रवर्ती ो ६ खण्ड साधनार्थ तेरह तेले करने होते है। वे तप नही ताप की णी मे आते है। *किन्तु जो मात्र कर्म क्षय हेतु विवेकपूर्वक विषय, कषाय* आहार का निग्रह करे, वह सच्चा तप है। इस प्रकार तप, ताप व ताप मे अतर समझना चाहिए।

प के भेद :

तप के मुख्यत दो भेद होते है–

(i) **बाह्य तप**– यह मोक्ष का बहिरग कारण है। इसमे अन्न, ल त्याग व शारीरिक कष्ट सहने की प्रधानता रहती है। इसमे शरीर

---

1 नीशीथ चूर्णि –५६   २ मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृ० २३१

व इन्द्रियों पर नियंत्रण किया जाता है। इनका आराधना करने वाल लोक में तपस्वी रूप में प्रसिद्ध हो जाता है।

भगवती आराधना के अनुसार बाह्य तप वह है, जिससे म दुष्कृत (पाप) के प्रति उद्यत नही होता व जिससे आभ्यन्तर तप के प्र श्रद्धा उत्पन्न होती है और पूर्व ग्रहित स्वाध्याय, व्रत आदि योगो दे जिससे हानि न होती हो। बाह्य तप ईंधन है, जो आभ्यन्तर तप रू अग्नि को, कर्मों को भस्म करने के लिए प्रज्वलित करने में सहाय होता है किन्तु ईंधन को प्रज्वलित नहीं किया जावे, तो उससे उष्ण (उर्जा) नहीं मिल सकती है। वैसे ही बाह्य तप को आभ्यन्तर तप से नह जोडा जावे तो वह मात्र देह दण्ड है और देह उत्पीडन बिना ध साधना के, उचित विवेक और लक्ष्य के इष्ट नहीं है। ऐसा तप अज्ञा या बाह्य तप होता है।

ये बाह्य तप कैसे–कैसे होता है, इनका रोमाचिक वर्ण औपपातिक सूत्र तथा वैदिक परम्परा के पुराण आदि ग्रथो मे मिलता है इनमे वर्णनानुसार अनेक साधक मात्र सूखी घास, तृण पत्ते आदि ख खाकर रहते थे। अनेक पत्थरों या कांटो पर सोते थे। कुछ मा जलाहारी थे, तो कुछ पवनाहारी होते थे और दिन रात खडे रहते थे त कुछ खडे–खडे ही खाते, पीते, मल मूत्र त्यागते ओर नीद लेते थे। कु ग्रीष्म में भी अपने चारो तरफ लक्कड जला उलटे लटक, प्रचण्ड धू रमाते थे, तो कुछ भयंकर शीत, शीतकाल मे भी आकण्ठ पानी मे ख रहते थे। कुछ ऐसे भी होते थे जो अपने हाथ पैर काट डालते और कु अपने मुंह व गुप्त इन्द्रियों को सील कर लेते तथा आंख भी फोड ले थे। कितनी भयकर वेदनाएं तप के नाम पर सहन की जाती थी। किन् यह सब बाल तप है। ऐसे अज्ञान तप से तेजोलेश्या आदि लब्धियां प्रा हो सकती है, किन्तु आत्म सिद्धि मे किंचित् भी सफलता नहीं मि सकती है।

बाह्य तप के ६ भेद है[१]–

१. उत्तरा ३०/८

(१) **अनशन**–सयम की विशेष शुद्धि, कर्मों की निर्जरा हेतु आहार का त्याग करना। इसके भी अवान्तर दो भेद है (अ) इत्वरिक–थोडे काल के लिए व (ब) यावत्कालिक–जीवन पर्यन्त संथारा करना। क्षुधा शान्त हेतु संतुलित आहार करना प्रकृति है, अधिक आहार करना विकृति है और आहार न करना सस्कृति है। आहार करने न करने के कारण शास्त्र मे बताए गए है जो इस प्रकार है–

"क्षुधाशान्त वैयावृत्य ईर्या सयम पालन करने।
१ २ ३ ४
प्राण रक्षा और धर्म चितवन् आहार करे मुनिदा।।
५ ६
हूँ तो सत साधु का बदा।।

बीमारी उपसर्ग होय, ब्रह्मचर्य जीव की रक्षा।
१ २ ३ ४
छ कारण मुनि आहार करे ना तप शरीर त्यागदा।।
५ ६
हूँ तो सत साधु का बदा।।[1]

(२) **उणोदरी**–आहार, उपाधि व कषाय की न्यूनता करना उणोदरी है। यह भी दो प्रकार का है–

(अ) द्रव्य उणोदरी व (ब) भाव उणोदरी।

इस तप का बडा महत्त्व है। निशीथ भाष्य मे कहा है–

" थोवोहारो थोव भणियो, जो होइ थोवनिद्दोय।
थोवो वही उवगरणो, तस्सहु देवावि पणमति।।"

अर्थात् जिनका आहार, भाषा, निद्रा व उपधि अल्प है, मित है उन्हें देवता भी प्रणाम करते है।

1 स्वरचित रचना से।

व्याख्या इस प्रकार की गई है–"अनाशातना बहुमान करण च विनय।
यह धर्म का मूल है। इसके सात भेद हैं यथा–

(१) ज्ञान, (२) दर्शन, (३) चारित्र, (४) मन, (५) वचन, (
काया व (७) लोकोपचार।[1]

विनय का बडा महत्त्व है। कहा है–

"विणओ सासणो मूल विणिओ संजओ भवे।
विणयोओ विप्प मुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो।।"

अर्थात् विनय जिन शासन का मूल है, विनीत ही सयमी
सकता है। जो विनय हीन है उनका क्या धर्म और क्या तप ? और
कहा है –

"विनय धर्म का मूल है, विनय ज्ञान का मूल।
सुख सम्पत अरू गुरु कृपा, विनय बिना निर्मूल।।"

कहावत भी है–"जे नमे ते गमे।" कविवर बिहारी ने कहा है–

"नर की अरू नल नीर की, गति एके कर जोई।
जे ते नीचे हो चले, ते ते उचे होई।।"

"उत्तराध्ययन सूत्र" का प्रथम अध्ययन विनय पर ही है जि
शिष्य के विनय को सविस्तार समझाया गया है। विनय के महत्त्व
दर्शाते हुए श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है–

"जे सद्गुरु उपदेशी थी, पाम्यो केवल ज्ञान।
गुरु रहा छद्मस्थ पण, विनय करे भगवान्।।

यदि शिष्य केवल ज्ञान प्राप्त कर भगवान् भी हो जाय अ
गुरु छद्मस्थ रहे तो वह शिष्य–गुरु का विनय व्यवहार रखते है।

विनय का क्या फल है? इसका उत्तर शास्त्रकार देते

---

१ विशेषावश्यक भाष्य ३१०।

हते है–

वंदण एण नीय गोय कम्म खवइ।
उच्च गोय कम्मं निबधइ।।"[1]

अर्थात् वंदन से नीच गोत्र का क्षय और उच्च गौत्र का बंध ता है।

अविनीत शिक्षा का पात्र नही होता है। तीन प्रकार के व्यक्ति चना देने योग्य नही होते (१) अविनीत (२) जिह्वा लोलुपी व (३) कलह पशान्त न करने वाला।[2]

(३) **वैयावृत्य**– आहार, औषधि आदि लाकर देवे व इसी प्रकार न्य सेवा करने को वैयावृत्य कहते है। इसके दस भेद हैं– (१) आचार्य,) उपाध्याय, (३) स्थविर, (४) तपस्वी, (५) ग्लान, (६) नव दीक्षित (७) ल, (८) गण, (९) सघ और (१०) साधर्मिक की सेवा करना।

सेवा महान् धर्म है। सेवा से व्यक्ति महान् बन जाता है। खियो की सेवा करने वालो की हड्डी भी हीरे से बहुमूल्य हो जाती है। स उक्ति को स्पष्ट करने हेतु महात्मा गांधी का उदाहरण प्रस्तुत है। हात्मा गाधी एक बार डॉक्टर के पास दात निकलवाने गये। उनके ाथ एक साहित्यकार भी था जिसे एक हरिजन ने कहा था कि गांधी ी का निकाला हुआ दात मुझे ला देना। मै उसे सदा साथ रखूंगा। ब डॉक्टर से दात मागा तो उसने दात यही रहेगा कहते हुये देने से न्कार कर दिया। वही पास का कम्पाउण्डर भी दांत लेना चाहता था। क दांत के लिये चार उम्मीदवार हो गये। सायकाल मे साहित्यकार ने ह कह कर कि गांधी जी अपना दांत मगा रहे है, डॉक्टर से दांत ले ाये और मित्रो से उसने इसका जिक्र किया। तब एक मित्र ने उस दांत के एक हजार रुपये, दूसरे ने दो हजार तो तीसरे ने दस हजार मे उक्त दात खरीदना चाहा। किन्तु साहित्यकार ने कहा गांधी जी के दांत का वास्तविक हकदार हरिजन ही है और वह दांत उसे ही दिया गया। यह

१ उत्तरा. सूत्र अ १६। २ स्थानाग ३/४७६।

गाधीजी की सेवा धर्म की साधना का ही एक करिश्मा था।

(४) **स्वाध्याय–** आगमिक मर्यादा को ध्यान मे रख
के कारणों को टाल कर आगमो का (या आध्यात्मिक सद्ग्रन्थो
अध्ययन–अध्यापन करना स्वाध्याय है। स्वाध्याय के पांच भेद हैं-(
वाचना, (२) पृच्छना, (३) पर्यटना, (४) अनुप्रेक्षा व (५) धर्मकथा।

(५) **ध्यान–** अन्तर मानस मे लीन होना, हृदय मंदिर में
करना या चित्त को किसी विषय या लक्ष्य पर एकाग्र करने का
ध्यान है। इसके चार भेद है–(१) आर्त्तध्यान, (२) रौद्रध्यान, (३)
व (४) शुक्लध्यान। इनमे प्रथम दो अशुभ, तीसरा शुभ व चौथा शुद्ध

(६) **व्युत्सर्ग**[1] – कर्म बंध के हेतु व ममत्व आदि का
करना व्युत्सर्ग है। इसके दो भेद है–

(i) **द्रव्य व्युत्सर्ग** – यह चार प्रकार का है– (१) शरीर,
गण, (३) उपधि व (४) सदोष आहार पानी का त्याग करना।

(ii) **भाव व्युत्सर्ग** – यह तीन प्रकार है– (१) कषाय,
विषय, रूप, ससार और (३) कर्म का त्याग करना।

अतिम समय मे जो सथारा किया जाता है वह भी इसी त
अन्तर्गत है।

तपाचार के बारह भेद – तप के बारह मे दो की पालन
दोष लगाना तपाचार है।[2]

तप के विस्तार से ३५४ भेद भी होते है।[3] अनशन के २०
उणोदरी के १४ भेद, भिक्षाचर्या के ३० भेद, ररा परित्याग के ६
काया क्लेश के १३ भेद, प्रति संलीनता के १३ भेद, प्रायश्चित के
भेद, विनय के १३४ भेद, वैयावृत्य के १० भेद, स्वाध्याय के ५ भेद,
के ४८ भेद एव कायोत्सर्ग के ८ भेद, यो कुल ३५४ भेद होते है।

१ दशा श्रुतास्कन्ध ५–१४ । २. पच प्रतिक्रमरण।
३ उववाई सूत्र।

तप के तीन भेद – वैष्णव परम्परा मे तप के तीन प्रकार बताये
[1] यथा–

(i) **तामस तप**– जो मूढतापूर्वक या हठाग्रह से केवल स्व–पर पीडा व हैरान करने की दृष्टि से किया जाता है।

(ii) **राजस तप** – जो सत्कार, सम्मान व पूजा प्रतिष्ठा के लिये भपूर्वक किया जाता है।

(iii) **सात्विक तप** – जो तप किसी प्रकार की फलाकाक्षा रखे ना (मात्र कर्म निर्जरा हेतु) परम श्रद्धा से मन, वचन व काया से किया ता है। यह आत्म शुद्धि हेतु होता है।

तप के आठ भेद – मूलत तप इत्वरिक (कुछ काल की मर्यादा क) व यावत्कालिक (आजीवन) यो दो प्रकार के होते है। इनमे वरिक के ६ तथा यावज्जीवन के दो भेद यों कुल आठ भेद होते हैं।

इत्वरिक के ६ भेद इस प्रकार है–

(१) **श्रेणी तप** – उपवास बेला, तेला आदि क्रम से बढते–बढते रना।

(२) **प्रतर तप** – चार खाने वर्ग मे निम्न प्रकार बाई तरफ से हिनी तरफ अकित अको के अनुसार तप करना, यथा–

१	२	३	४
२	३	४	१
३	४	१	२
४	१	२	३

इस वर्ग के अनुसार प्रथम १, २, ३ व ४ उपवास करे। इसी तरह आगे लिखे वर्ग की दूसरी, तीसरी व चौथी पक्ति के अनुसार क्रमश तप करे ।

। गीताम अ १९ श्लोक १९–२९ ।

(३) **धन तप** –इसमे ८ x ८ = ६४ खानो का वर्ग बना क्र क्रम में अक स्थापित कर तदनुसार तप करें ।

(४) **वर्ग तप** – पूर्वोक्त वर्ग समान ही ६४ x ६४ = ४०९६ खा का वर्ग बना कर उसमे यथा क्रम से अंक स्थापित कर तदनुसार करें ।

(५) **वर्गावर्ग तप** – पूर्वोक्त वर्ग समान ही ४०९६ x ४०९६ = १,६७,७७,२१६ खानों का वर्ग बना यथा क्रम से अक स्थापित तदनुसार तप करें ।

(६) **प्रकीर्ण तप** – रत्नावली, कनकावली, मुक्तावली वृहत्-सि क्रीडा लघु सिंह क्रीडा, गुणरत्न संवत्सर, सर्वतोभद्र, महाभद्र, आयबि वर्धमान नवकारसी, प्रहरसी, प्रतिमा वहन आदि विविध तप (इसमे आते हैं।

यावज्जीवन तप के दो भेद – वे इस प्रकार हैं–

(१) **भक्त प्रत्याख्यान**–चारों आहार का त्याग यावज्जीवन क

(२) **पादपोगमन**– एक आसन में शरीर को स्थिर कर आहार व शरीर का भी त्याग यावज्जीवन के लिये करें। संथारा करने के बाद किसी अंग–उपांग को भी हिलावे–डुलावें नही। वृक्ष कटी डाल की तरह सदा के लिये स्थिर हो जावे ।

तप ज़ो छोटे पर फल मोटे–कुछ तप ऐसे भी है साधना सरल है पर फल की दृष्टि मे वे बडे महत्वपूर्ण है। ऐसे कुछ का वर्णन यहां दिया जाता है। साधकों को इन्हें अवश्य चाहिये।

(i) **तीन मनोरथ चितवन**– इसमें त्याग कुछ नही करना पडता। भावना भाना होता है, जो इस प्रकार है–

(अ) ६ काया का आरम्भ, नव प्रकार का वाह्य व चौदह

आभ्यन्तर परिग्रह– यह संसार मे भटकाने वाला है। इसका त्याग ँगा, वह दिन मेरे लिए धन्य होगा।

(ब) द्रव्य से मस्तक, भाव से मन को मुडित कर दस प्रकार के धर्म व पॉच समिति, तीन गुप्ति का शुद्ध आराधक निर्ग्रंथ प्रव्रज्या कार करूँगा, वह दिन मेरे लिए धन्य होगा।

(स) आलोयणा निंदना करके, निशल्य होकर अठारह पाप व ो आहार का त्याग करके सलेखना सथारा पूर्वक समाधि मरण को करूँगा, वह दिन मेरे लिए धन्य होगा।

(ii) सागारी-सथारा– नित्य चौबीस घटो मे ७–८ घटे सभी के सोने मे जाते है। बिना त्याग प्रत्याख्यान के आश्रव की सभी गाएँ निरन्तर सोते समय भी आती रहती है। इससे बचने हेतु जब भी न करना हो सागारी सथारा निम्न पाठ से ग्रहण कर लेना चाहिए। मे दवा, सचित्त का सघटा आदि का आगार आवश्यक हो तो वह भी जा सकता है। पाठ इस प्रकार है–

"आहार शरीर उपधि, पचक्खुं पाप अठार।
तीन बार गुणस्युं नही, जब लगे श्री नवकार।।"

ी पक्ति इस प्रकार भी बोलते है–

'मरण पाउँ तो बोसिरे, जीउँ तो आगार।

परन्तु इसकी अपेक्षा प्रत्याख्यान दृष्टि से पूर्वोक्त पंक्ति अधिक ुक्त है। जब भी सथारा पारना हो तो पाठ के अनुसार तीन नवकार कर खुले हो सकते है। इसके धारण से नित्य ७–८ घंटे (शयनकाल) सवर का लाभ सहज ही प्राप्त हो जाता है। कदाचित् कभी शयन हावसान भी हो जाय तो वह मरण बाल मरण न होकर पंडित पडित मरण श्रेष्ठ मरण होगा।

(iii) **प्रत्याख्यानी मुद्रिका धारण**— नित्य चौबीस घटो मे
पानी ग्रहण का काल मात्र एक दो घटे से अधिक नही होता। कि
त्याग न होने से आहार पानी की बडी क्रिया चौबीस घटें अनाव
लगती है। इससे सहज ही बचा जा सकता है। इस हेतु एक मु
(अंगूठी) किसी अंगुली विशेष मे इस धारणा से नियम लेकर कि
तक वह उक्त अंगुली में रहेगी और तीन नवकार गुण नहीं लूंगा,
पानी ग्रहण नही करूँगा। यह नियम मात्र नवकार बोलकर भी किय
सकता है। किन्तु स्मृति व उपयोग सहज रहे, इस हेतु अंगूठी से
सामान्य साधको के लिए ठीक रहती है। इस नियम से प्रति दिन
घंटो मे करीब २२–२३ घटो का उपवास का लाभ सहज प्राप्त हो
है।

(iv) **स्थूलव्रत ग्रहण**—श्रावक के बारह व्रतो को यथा
ग्रहण करने से चौदह राजू प्रमाण समग्र लोक की क्रिया रुककर
मे रहे जहाज के पानी वत् अल्प क्रिया लगना ही शेष रह जाती है।
सरलता से ग्रहण हेतु गृहस्थ साधक टीप (प्रकाशक–सम्यग्
प्रचारक मण्डल जयपुर) का उपयोग किया जा सकता है।

(v) **चौदह नियम**— इन्हे नित्य धारण करने से मेरू जि
पाप टल कर सुई मात्र पाप शेष रह जाता है। आत्मार्थी के लिए
उत्तम है। ये इस प्रकार है–

"सचित्त दव्व विग्गइ पणी तंबुल वत्थ कुसुमेसु।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७
वाहण सयण विलेपन बभ नाहेण दिसी भत्तेसु।।"
८ ६ १० ११ १२ १३ १४

अर्थात् (१) सचित्त (२) द्रव्य, (३) विगय, (४) उपानह,
ताम्बूल, (६) वस्त्र, (७) पुष्प, (८) वाहन, (६) शैया (पेशाव घर व शौच
भी) (१०) लेपन, (११) ब्रह्मचर्य, (१२) स्नान, (१३)दिशा व (१४) भोजन
मर्यादा करना।

इन्हे भलीभाति समझकर उपर्युक्त गाथा नित्य धारणा हेतु याद
लेनी चाहिए। प्रात अभ्यास कर लेने पर दो मिनिट से भी कम
ाय मे ये सभी नियम ग्रहण किये जा सकते है।

(vi) **वंदन भक्ति**–नित्य अरिहन्त प्रभु को (जो बारह गुण युक्त
एक–एक गुण स्मरण करते बारह वदन विधि से करे। इसी प्रकार
प्रभु आदि को भी कर सकते है। इन्हे भक्ति सहित शुद्ध भावो से
न हो तो कर्मों की महान निर्जरा के साथ–साथ तीर्थंकर गौत्र का
ार्जन भी हो जाता है।

इसी प्रकार अन्य उपयोगी नियम–उप नियम भी विचार कर
ण किये जा सकते है।

का उद्देशय .

(i) **कषाय व विषय भोग की आसक्ति हटाना**– तप का उद्देश्य
ोर को दुर्बल या इन्द्रियो को क्षीण करना नही है। किन्तु इन्द्रियो की
ायाभिमुख वृत्ति को नियन्त्रित कर कषायो पर विजय प्राप्त करना है।
वान् महावीर ने स्पष्ट कहा है–

"नो इह लोगट्ठयाए, तव महिट्ठिज्जा,
नो परलोगट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा।
नो किति–वण्ण सद्द सिलोगट्ठयाए,
तव महिट्ठिज्जा नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए, तव महिट्ठेज्जा।।"

अर्थात् इस लोक व परलोक के सुखो के लिए कीर्ति व प्रशसा
प्ति के लिए या लौकिक कामना की पूर्ति के लिए तप नही करना
ाहिए। तप तो मात्र निर्जरा, कर्म मल से मुक्ति पाने, आत्मा की
र्मलता व शुद्धता के लिए करना चाहिए। तप का यह कितना महान्
श्य है। तप से विषय भोग व कषायो मे कमी आती है। यदि ऐसा न
तो वह तप अज्ञान तप है, जिसे भद्रबाहु स्वामी ने गज स्नानवत्
र्थक कहा है।

(ii) आत्म-शोधन – आज के विज्ञान एव तर्क प्रधान यु प्राय यह प्रश्न कर लिया जाता है कि जब किसी आत्मा को कष्ट दे पाप है, तो फिर निज आत्मा को तप के द्वारा क्यो कष्ट दिया है ? क्या यह पाप है ? यह प्रश्न नया नही है। प्रभु महावीर से भी ऐसा पूछा गया था तो प्रभु ने सारगर्भित उत्तर दिया था– निज्जरट्ठ तव महिट्ठिज्जा।' अर्थात् तप निर्जरा हेतु करना चाहिये। श्रुतधर आ उमास्वाति ने भी ऐसा कहा है–'तपसा निर्जराय'[1]। जैसे शरीर सफाई हेतु स्नान करते है, कपडो की सफाई हेतु साबुन, सर्फ आदि प्रयोग करते है, पेट की सफाई हेतु जुललाब लेते है, वैसे ही आत्मा लगे कर्म रूपी मैल को तप से साफ किया जाता है। जिस प्रकार त से सोना कुन्दन, मक्खन का घृत और आटे की रोटी बन जाती है, उ प्रकार आत्मा को सम्यग् विधि से तपाने से कर्मक्षय होकर, उसका वि स्वरूप परमात्म तत्त्व प्रगट हो जाता है। यहाँ सम्यक् विधि से तप करने अभिप्राय जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित तपाराधना मार्ग से है। साध द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव व क्षयोपशमादि को ध्यान मे रख तपाराधन क अन्यथा कर्मक्षय का साधन कभी–कभी कर्म बधन असमाधि व अनर्थ कारण बन जाता है कहा भी है–

"सोऊ तवो कायव्वो जेण मणो अमंगल न चितेइ।
जेणण इदिया हायति, जेण जोगा न हायन्ति [2]।।"

अर्थात् वही तप योग्य है जिसमे मन समाधि में रहे, अमंगल चितन आत्त, रौद्र, ध्यान न आवे तथा जिसमे इन्द्रियॉ व योगों का ह न हो।

किन्तु इस कथन का यह भी अभिप्राय नही कि साम शारीरिक दुर्बलता आदि से भी तप न करें। यह कथन छ मासी आ उन बडी–बडी तपस्याओ की अपेक्षा से है जिन्हे विना पूर्व मे छोटे

१. तत्त्वार्थ सूत्र १ । २. मरण समाधि १३४ ।

साधना किये आवेश मे, बिना स्वय की शक्ति आदि का विचार किये प्रदर्शन हेतु या यश कीर्ति, लोभवश कि हमारा जुलूस निकलेगा, ी की तरह शोभा होगी, आमद होगी आदि कारणो से ग्रहण कर लेते तो बाद मे असमाधि के हेतु बनते है। सम्यक् तप तो स्वय एक धि है। जिस तप मे असमाधि हो तो समझना चाहिए कि तपारा– मे कुछ भूल हुई है। तत्त्वज्ञ श्री विनयचनद्रजी ने भी चार समाधि मे को समाधि कहा है–

सूत्र विनय आचार तपस्या चार प्रकार समाध रे प्राणी।
ते करिये भवसागर तिरिए, आतम भाव आराध रे प्राणी।।
श्री महावीर णमो वरवाणी।[1]

तप के लिए द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव भी देखना आवश्यक है। ¯ मे कहा है–

"बल थामे च पेहाए सद्धामा रुग्ग मप्पणा।
पित काल च विण्णाय, तइप्पाण निजुजय[2]।।"

अर्थात् अपने मनोबल, शारीरिक बल, श्रद्धा आरोग्य, क्षेत्र आदि देख तदनुसार तप करे।

(iii) देह बुद्धि हटा विदेही की अनुभूति करना– तप का रा मुख्य उद्देश्य देह बुद्धि का विसर्जन करा स्व–पर का बोध करा मगा है। साधक देह मे रहता है। तप से देह त्याग का लक्ष्य नही है। का मे तो देवाधिदेव तीर्थंकर भी रहते है। किन्तु देह में रहते देही की : से भिन्न अनुभूति करना तप का लक्ष्य है। जैसे भूख, प्यास देह को आत्मा को नही। गर्मी, सर्दी आदि की पीडा शरीर को है, आत्मा को ी। आत्मा तो अनन्त आनन्द का शाश्वत स्त्रोत है।

तप की सीमा–इस काल मे जघन्य नवकारसी व उत्कृष्ट ६

विनयचन्द चौबीसी का महावीर स्तवन से   २ दशवे ८/३५

माह तक के तप (निराहार) का विधान है। वैसे गठि सहिय, मुट्ठि सहिय के अनुसार कपडे के गाठ लगा कर खोलने तक आहार का त्याग भी जघन्य तप है, जिसे सुनकर अनेक आश्चर्य करते है कि यह भी तप है, यह तो तप का उपहास है। किन्तु इसमें भी बहुत बडा रहस्य है जो कभी तप नही करते, उन्हे भी इस ओर अग्रसर करने का प्राथमिक तरीका है।

तप के साथ विवेक आवश्यक– तप के साथ विवेक रहे यह आवश्यक है मात्र रूढिया, परपरा से बिना उचित विवेक निर्जरा का हेतु तप भी बध का कारण बन जाता है। तपाराध वालो को यह समझ होनी चाहिए कि साधक के ६ कर्त्तव्यो मे नबर पॉचवा है। पहिला नम्बर देवाराधना, दूसरा गुरुसेवा, स्वाध्याय, चौथा सयम और पॉचवा कर्त्तव्य तप है। इस प्रकार त चार कर्त्तव्यो की पालना का विवेक और फिर विवेक पूर्वक त किया जाय।

तप का फल–ज्ञानियो ने तप का सभी अन्य साध विशिष्ट फल बताया है। यहॉ कुछ तपो का फल उल्लेखि जाता है–

(१) **नवकारसी तप**–एक नवकारसी करने से १०० वर्ष जितने दु ख भोगे उतने अशुभ कर्म क्षय होते है।

(२) **प्रहरसी तप**–एक प्रहरसी करने से १००० वर्ष जितने दु ख भोगे उतने अशुभ कर्म क्षय होते है।

(३) **एकासना तप**– एक एकासन करने से दस ल नरक मे जितने दु ख भोगे उतने अशुभ कर्म क्षय होते है।

(४) **उपवास**– एक उपवास करने से एक हजार व नरक मे जितने दु ख भोगे उतने अशुभ कर्म क्षय होते है।

(५) **बेला**–एक वेला करने से एक क्रोड लाख वर्ष

ने दु ख भोगे उतने अशुभ कर्म क्षय होते है।

आगे तेला आदि मे प्रत्येक पूर्व के तप से पॉच गुणा अधिक समझना।

के कुछ अनूठे उदाहरण :

(१) **तीर्थंकर ऋषभदेव**—एक वर्ष की सुदीर्घ अवधि तक घोर आराधन किया। पश्चात् अक्षय तृतीया को पारणा किया। वर्षी तप परम्परा आज भी जो देखने को मिलती है, वह उन्ही के तप की देन

(२) **चरम तीर्थंकर महावीर**—साढे बारह वर्ष तक घोर तप ा जिसमे मात्र ३४६ दिन ही आहार किया था। आपने सबसे लम्बा ६ मास तक निराहार रहकर किया था।

(३) **गणधर गौतम**—दीक्षा के दिन से यावज्जीवन बेले की घोर ्या की थी। भिक्षा हेतु भी आप स्वय जाते थे। एक बार आनन्द क ने सथारा ग्रहण किया तो उसे दर्शन देने पधारे। आनन्द ने स्वय उत्पन्न अवधि ज्ञान की सीमाऍ कही तो गौतम को शका हुई, व कि इतना ज्ञान श्रावक को नही होना चाहिए। गौतम प्रभु महावीर ास लौटे तो प्रभु ने आनन्द का कथन सही बता, गौतम को क्षमापना ने हेतु वापस भेजा। चौदह हजार सन्तो के नायक होते हुए भी, म तत्काल क्षमा—याचना व आलोयणा हेतु आनन्द के पास पहुॅचे। उनके तपस्वी के साथ—साथ आदर्श विनयी होने का बडा प्रमाण है।

(४) **श्रेणिक की रानियॉ**—फूलो व मखमली शैयाओ पर सोने ो रानियॉ सारा वैभव छोड, जैन श्रमणियॉ बन गई थी। फिर ावली कनकावलि, वर्धमान, आयबिल आदि महान् व घोर तपस्याऍ जिनका वर्णन अतगड सूत्र मे पढकर रोम रोम खडे हो जाते है। है इन महान् तपस्विनी रानियो को।

अनूठे लघु तप के उदाहरण :

(५) **राजकुमारी चन्दनबाला**—मात्र तेला का तप किया। पारणे मे बाकले मिले। फिर भी वह दरवाजे पर खडी होकर भावना लगी—प्रभू महावीर पधारे। मै उनको कुछ देकर फिर पारणा करू। न गहने पहिने थी न सुदर वस्त्र। जेल के कैदियो जैसे वस्त्र पहिने थी। सिर मुडा हुआ था। पैरो मे बेडिया और हाथो मे हथकडिया थी। दीर्घ तप न होते हुए भी भावना की उत्कृष्टता से भ मह जिनके पॉच माह पच्चीस दिन की तपस्या थी, स्वय पारणे हेतु चन्दन के पास पहुचते है। पारणा हुआ पशुओ के खिलाने के बाकलो से। दाता की उत्कृष्ट भावना ने देवो और इन्द्र का आसन भी चलाय कर दिया। देवगण उस दान की महिमा करने आये और 'अहो —अहोदान' का उद्घोष करते साढे बारह क्रोड सोनैया बरसा गये। की उत्कृष्टता ने निकृष्ट वस्तु के दान और तेले जैसी छोटी तपस्या भी महान बना दिया

(६) **पूणिया श्रावक व उसकी पत्नी**—दोनो आदर्श दृढधर्मी वे न्याय नीति से पूणी का निर्वद्य व्यापार कर नित्य इतना ही अर्थोपा कर पाते थे कि दोनो की उदरपूर्ति हो सके। एक बार विचार किया साधर्मी की सेवा—आतिथ्य कैसे की जावे ? उत्तम भावना से उन्ह साधर्मी को नित्य भोजन कराने हेतु एकान्तर तप करने का निश्चय लिया। इस प्रकार वे दोनों क्रम से एक दिन छोडकर उपवास करते नित्य किसी एक साधर्मी को आमत्रित कर वडे भाव भक्ति से उसे भो कराते। यद्यपि इनका तप एक उपवास से अधिक नही होता था कि उत्तम भावना के बल से वह ऐसा आदर्श तप बन गया कि उसकी प्रश (अनेक अन्य दीर्घ तपस्वी उस समय होते हुए भी) भ महावीर ने अप देशना में की ।

ाधको के लिए कुछ विशिष्ट तप

(i) धर्म चक्र–इसमे एक व्यक्ति तेला व ४२ व्यक्ति बेले करते । पारणा सबका एक दिन होता है।

(ii) अक्षय निधि तप–इसमे सोलह दिन तक एकासन करते ।

(iii) वर्षी तप–पूरे दो वर्ष तक एकान्तर उपवास करते है।

(iv) ओली तप–नव दिन तक आयबिल करते है।

अन्य धर्मों मे तप का स्थान :

सभी धर्मो मे तप को महान् बताया है। वैष्णव धर्म मे कहा है–चाहे गधा जैसे चर, पर एकादशी तो कर।' श्रीमद्भागवत गीता मे कहा है–'विषयाणि निवर्तन्ते, निराहारस्य देहिन ।' अर्थात् निराहार देह को रखने से विषय वासना की भी निवृत्ति हो जाती है। 'महाभारत' मे स्वर्ग के सात द्वारो मे पहला द्वार तप बतलाया है। इस्लाम धर्म मे भी रोजा जो तप का एक विशिष्ट रूप है, का विधान किया गया है। रोजे मे दिन मे कुछ भी नही खाया जाता व एक माह का होता है। बौद्ध धर्म मे तप का बडा महत्त्व बताया है। म० बुद्ध ने स्वय आरम्भ मे ६ वर्ष तक कठोर तप किया था। किन्तु बाद मे मध्यम मार्ग अपना लिया। उनके मतानुसार जैसे वीणा के तार न अधिक कसे हो, और न अधिक ढीले हो, वैसे ही शरीर को भी इतना तपाया जावे कि उससे समभाव भग न हो। म० बुद्ध ने कहा था–"श्रद्धा मेरा बीज है, तप मेरी वर्षा है।" उन्होने चार उत्तम मगलो मे तप को सर्वप्रथम मगल माना है और इसके आराधन की प्रेरणा भी दी है।

उपवास तप के विषय मे कतिपय प्रमुख व्यक्तियों के विचार :

राष्ट्रपिता महात्मा गाधी–आप प्राकृतिक चिकित्सा और उपवास

मे बडी रूचि रखते थे। राष्ट्र की समस्याओ को हल करने के लिए भी आपने आध्यात्मिक दृष्टि से कई लम्बे उपवासो का प्रयोग किया था। आपके विचारानुसार नब्बे प्रतिशत रोग भी उपवास से दूर किये जा सकते है।

अप्टन सिक्लेयर—आपके कथनानुसार उपवास तप पूर्ण एवं स्थायी सुख दाता है। उपवास प्रकृति की स्वास्थ्य—सरक्षक विधि है जिसके द्वारा प्रकृति रोगो से बचाती है।

एडवर्ड हूवर डेवी एम.डी.—आप डाक्टरी के कारण नही वरन् उपवास, तप सम्बन्धी विचारो एवं प्रचार के कारण प्रसिद्ध है। आपने एक प्रकार से एक अभियान ही चला दिया था जिसका नारा था "नाश्ता छोडो।" अर्थात् प्रत्येक स्वस्थ एव रोगी को दोपहर तक कुछ नही खाना चाहिए। रात्रि को सोने से जो शक्ति मिलती है उसी से काम लो तथा दो पहर तक पेट को आराम दो। आहार पचाने मे शरीर की पूरी शक्ति व्यय होती है। यथा सभव उसे बचाओ। आपने उपवास और पानी के प्रयोग से ही कई रोगियो को स्वस्थ बना दिया । नाश्ता छोडने से ही कई व्यक्तियो की आखो की रोशनी बढ गई, सुनाई साफ देने लगा और घ्राणेन्द्रिय भी तीव्र हो गई। पुराने दमा बवासीर के रोगियो को भी आश्चर्यजनक लाभ हुआ। वस्तुत भूख से अधिक भोजन ही रोगो का जन्मदाता है।

डा. एरनाल्ड इहरिट—आपकी राय मे रोगों का कारण श्लेष्मा खाद्य पदार्थो का अत्यधिक प्रयोग है। सभी प्रकार के अन्न,कन्द, आलू, मांस, मछली श्लेष्मा कारक है। केवल हरी सब्जिया, सूखे फल ही श्लेष्मा-निवारक है। आपने चौदह माह १२६ दिन उपवास किये जिसमे ४६ दिन तक निराहार भी रहे। भोजन मे फल, सब्जिया लेते रहे। इस प्रयोग मे पूर्ण स्वस्थ हो गए तथा सवा दो घण्टे तक लगातार बिना ठहरे दौड लगाने लगे और ५६ घण्टे तक लगातार चलकर सभी को चकित कर दिया।

वस्तुत उपवास तप का धर्म मे जो महत्त्व है वह विज्ञान और स्वास्थ्य सम्मत है। उपवास मे शारीरिक स्वस्थता के साथ-साथ मानसिक स्वस्थता और आत्म शक्ति की उपलब्धि होती है।

तप का महत्त्व-तप जिन शासन की शान है और जैन धर्म का प्राण है। यहा इसके महत्त्व पर प्रकाश डाला जाता है-

(१) **धार्मिक दृष्टि से**-सभी धर्मो मे तप का बडा महत्त्व है। वैदिक धर्म मे तो इसे मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का महामत्र बताया है। यहां तक कहा गया है कि ईश्वर को भी सृष्टि निर्माण करने से पूर्व तप करना होता है। स्वय ब्रह्मा को भी तप मे ही प्रतिष्ठित कहा है। वैदिक ग्रंथो मे यहा तक कहा है कि ससार मे जो भी दुर्लभ है, दुसाध्य है या अप्राप्य है, वह सब तपस्या से प्राप्त हो जाता है। कहा है-"सर्वम् तत् तपस्या लभ्यम्।" इस प्रकार असभव को भी सभव करने की शक्ति तप मे है। बौद्ध धर्म मे तप को बिना पानी का स्नान कहा है। इस्लाम धर्म मे प्रत्येक मुसलमान को प्रतिवर्ष रमजान मे तीस दिन के रोजे का (दिन मे अन्न, जल कुछ न खाना पीना) पालन करना अनिवार्य है। ईसाई धर्म मे भी व्रत का विधान है।

(२) **तप जीवन की उर्जा है**-जीवन को विकसित एव उन्नत करने हेतु तप आध्यात्मिक उष्मा है। गह ऐसी उर्जा है जो वीर्य की शक्ति को विषय वासनाओ से होने वाले अध पतन से बचाकर, उसे ऊर्ध्वगामी बना चेतना व प्राणो को विकसित करती है। यह ऐसी उर्जा है जिससे व्यक्तिगत जीवन की शुद्धि ही नही होती वरन् सामाजिक जीवन की भी शुद्धि होती है। म गाधी ने सत्याग्रह द्वारा इस बात को सिद्ध करके दिखाया है।

(३) **तप द्वारा रोगो से मुक्ति**- तप से शारीरिक एव मानसिक दोनो प्रकार के रोगो से मुक्ति मिलती है। अनेक ऐसी है
। किसी भी चिकित्सा प्रणाली से उन्मूलित
साधारण रोग भी योग शक्ति के बल पर

अष्टांग योग मे वर्णित आसन व प्राणायाम से अनेक व्याधियां मिट ज है। यम और नियम के पालन से द्वेष बुद्धि का (जो एक मानसिक है) त्याग हो जाता है और हिसक व अहिसक वैर भाव भूलकर एक स बैठने लगते है। ध्यान और धारणा से मनोवांछित फल की प्राप्ति हो है। समाधि साधना सर्वानन्द को देने वाली है। आयबिल से कफ, बा कब्जियत आदि से छुटकारा मिलता है। इस प्रकार तपस्या से शारीरि व मानसिक रोगों से मुक्ति ही नही मिलती वरन् विशिष्ट सुख व आन की उपलब्धि भी होती है। तप से बाह्य मे शरीर दुर्बल होता है, प अन्तर मे आत्म बल बढता है। तप से तन मन व इन्द्रियों की शुद्धि हो है। कहा है–'तपसा कलमस हति'।[५] अर्थात् तप से मैल नष्ट हो शु होती है।

(४) तप महाप्रभावक होता है– तपस्वी की वाणी, विचार ए काया मे अद्‌भुत शक्तियां विकसित हो जाती है। महातपस्वी भ महाव के एक वचन ने महाहत्यारे अर्जुन माली का जीवन पलट कर, उ महामुनि बना दिया था। महात्मा बुद्ध के एक साक्षात्कार ने खूंखार ड अगुलीमार के जीवन को बदल दिया था। ईसा मसीह व चैतन्य महाप्र का मात्र काया स्पर्श कुष्ठ रोगियों को स्वस्थ कर देता था। ऐसे अने तपोधनी सत हुये है, जिनके मल मूत्र से ही दुसाध्य रोगी भी ठीक ह गये। महात्मा गाधी जब भी स्वराज हेतु आन्दोलन काल मे उपवासो क घोषणा करते, तो अग्रेजो का आसन (जिनके राज्य में सूर्य अस्त न होता।) डोलने लगता था। यह सब तपोशक्ति का अद्वितीय प्रभाव है सभी रिद्धि–सिद्धि व लब्धिया तप के आधीन है।

पाच आचारों मे तपाचार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नवपद मे तप नवम् पद है, जिसकी आराधना परम मगल रूप है। तीर्थंकर ग के बीस स्थानको मे भी तप का चौदहवां स्थान है। बिना तप के स साध्वी श्रावक श्राविका आदि कोई भी पद नही मिल सकता है। तप तीर्थंकर चक्रवर्ती इन्द्र आदि समस्त उच्च पद प्राप्त होते है।

---

५ मनु स्मृति

(५) तप सर्वोत्तम व सर्वोत्कृष्ट धर्म है– सामान्यत व्यवहार र्म के चार भेद है– दान, शील, तप और भावना। मुख्यत निश्चय पेक्षा मे भी धर्म के चार भेद है– ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप। उत्कृष्ट र्म के भी तीन अग बताये है– अहिसा, सयम व तप। कहा है– धम्मो गलमुक्किट्ठ अहिसा सजमो तवो।[१] इस गाथा से यह भी स्पष्ट होता है के वही तप उत्कृष्ट मगल और श्रेष्ठ है जो अहिसा व सयम से युक्त । और वही सम्यक् तप है। ऐसा तप सर्वोत्तम है, और कल्याण का नुत्तर मार्ग है। इस प्रकार विचार करने से सुस्पष्ट है कि तप ही एक सा धर्म है जो सबमे प्रधान है। तप धर्म की आराधना कर कर्मक्षय कर क्ष जाने हेतु ही, देवता भी मानव जन्म की अभिलाषा करते है। श्री नयचन्दजी ने कहा है–

"मानस धर्म दार्थ जाकी, आशा करते अमर रे।
ते पूरब सुकृत कर पायो, धरम मरम दिल घर रे।
– श्रीयास जिनन्द सुमर रे।[२]

(६) तप कर्मक्षय का सर्वोत्तम साधन है– कर्म रूपी ईंधन को ीघ्र जलाकर नष्ट करने हेतु तप अग्निवत् है। कहा है–"तवसा धुणइ राण पावग।"[३] अर्थात् तप से पुराने पाप भी नष्ट हो जाते है। क्रोड वर्षों सचित कर्म भी तप से शीघ्र क्षय हो जाते है। कहा है– "भव कोडी चिइ कम्म तवसा निज्जरिज्जइ।"[४] अर्थात् क्रोड भवो के सचित कर्म भी प से निर्जरित हो जाते है।

(७) तप से निकाचित कर्म भी क्षय होते है– शास्त्रकार कहते –"निविडतया बद्ध कर्म ग्रथि क्षपयति।"[५] अर्थात् घनीभूत निकाचित ध को प्राप्त कर्म भी तप से क्षय हो जाते है।

दशवै अ १ गा १।
विनयचन्द चौबीसी से।   ३ दशवै, १०/७।
उत्तरा ३०/६।   ५ ठाणाग, सूत्र १०/४४ की

(८) **तप मे अनुपम सुख है**– इच्छा की तृप्ति से सुख होता है वह निराकुल नही होता, जबकि तप इच्छा निरोध रूप होने से उसका सुख निराकुल होता है। भोग मे बल, वीर्य, धन आदि का नाश होता है जिससे जीव संतप्त होता है, जबकि तप से देह बल का ह्रास होते हुये भी आत्मिक बल बढता है और सतोष प्राप्त होता है। भोग मे खोना ही खोना है जबकि तप मे खोना नही पडता। भोगी असाता के उदय से भूख, प्यास, ज्वर रोग व मरणातिक वेदना मे आकुल व्याकुल हो कर्म बध करता है, जबकि तप से वह आत्म बल प्राप्त कर इन दुखो पर विजय प्राप्त करता है और समभाव से सतोषपूर्वक अशुभ कर्मों को क्षय करता है।

(९) **बिना तप के मोक्ष नही**–मोक्ष जाने से पूर्व सभी आत्माओ को तपाराधन करना अनिवार्य है। आत्मा के साथ लगी कर्मों की अनन्त–अनन्त वर्गणाओ का शीघ्र क्षय तप के माध्यम से ही होता है। शास्त्र मे कहा गया है–"सुय नाणम्मि जीवो वट्ट तो सो न पाणति मोक्खं।"[1] अर्थात् श्रुत ज्ञान मे निमग्न जीव भी यदि तप–संयम रूप योग को धारण करने मे असमर्थ हो तो मोक्ष प्राप्त नही कर सकता।

उपसहार– हमने नश्वर देह के लिये आत्मा को भव–भव मे अनन्त बार तपाया किन्तु आत्मा के लिये देह को कभी नही तपाया, कभी नहीं गलाया। आत्मा के लिये यह मनुष्य भव ऐसा उपयुक्त अवसर है कि इसे पाकर एक बार भी आत्मा के लिये हम देह को तपादे, देह को गला दे, तो आत्मा परमात्मा बन सकता है। किन्तु देह दृष्टि होने से, हम देह को तपाने कि बजाय उसका खूब पोषण करते है, उसके लिये अभक्ष्य का सेवन करना पडे, तो वह भी करते हैं। यदि इस देह को तात्विक दृष्टि से देखे तो यह मात्र टेडी मेडी हड्डियो का और मल मूत्र के सग्रह का चर्मवेष्टित ढाचा मात्र है। रसायन विद्वान वेत्ताओ ने इस देह की

१ श्रमण सूत्र (सम्यक् चारित्र सूत्र) से।

कीमत वर्तमान मे मात्र पचास पैसे आकी है। उन्होने विश्लेषण कर बताया है कि हमारे शरीर मे इतना लोहा है कि उसमे दो कीले बना सके और इतना चूना है कि एक छोटी सी दीवार पोती जा सके। शेष तो देह मे पानी ही पानी है। अशुचि भावना मे कहा गया है–

या देह तो है हाड मास और मल मूत्र की ढेरी।
या ढेरी राख मसाण को, इसमे नही हेरा फेरी।।
इसमे नही हेरा फेरी, या ढेरी भी नही तेरी।
यो तो पुद्गल को है खेल, पिछान इसी वेरी।।[१]

जब हमारे नश्वर देह की ऐसी स्थिति है, तो फिर समय रहते हम तप आराधना कर, क्यो न आत्म कल्याण कर ले।

तप का आराधन विवेक सहित एव समभाव पूर्वक मात्र कर्म क्षय हेतु होना अपेक्षित है। कहा भी है–"नो इह लोग ससप्पओगे, नो पर लोगट्ठाए, नो किट्टी वदणट्टयाए, तव महिट्टिज्जा[२] अर्थात् इस लोक की एषणाओ के लिए या परलोक की सुख की इच्छा से या वदन स्तुति हेतु तप नही किया जावे। तप मे समता भाव रखे। कहा है–"तवस्स मूल धित्ती।" अर्थात् तप का मूल धैर्य (समत्व भाव) रखना है।

मोक्ष मे तप के आराधन का महत्व सर्वोपरि है। बिना तप के नर भव को निष्फल बताया है। कवि सुजान मुनि ने कहा है–

"मात पिता ने पाल पोष की हाड मास की ढेरी।
तप संजम बिन नर भव निष्फल, भूमि भार भरे मेरी।।
प्रभु बिन कौन सुनेगा मेरी।"

आत्मार्थियो को इस प्रकार तप का सम्यक् स्वरूप व उसके महत्व को समझकर शीघ्र भव सागर से पार होने हेतु इसका सम्यक् आराधन करना चाहिए। महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागरजी ने कहा है–

---

१ स्वरचित पदो से।
२ दशवै. अ ९ उ ४ ।

''आत्म सूर्य की उष्मा तप है जिसमे जीवन क्षितिज चमकता।
विषय वासना का अधियारा फिर मन जग मे कही न दिखता॥
तप है जीवन का शुद्ध शोधन परिष्कार का सच्चा साधन।
अशुभ वृत्ति का करे निवारण, शुद्ध वृत्ति का हो सम्पादन॥



५. संयम

मेवे खाओ त्याग के, जो चाहो आराम।
इन भोगो मे क्या रखा, नकली आम बादाम ।।१।।

जीवन का क्या है पता, कब तक है कब जाय।
मुक्ति नगर पाथेय हित, सयम सुखद उपाय।।२।।

बिन सयम मिलता नही, कभी मोक्ष का द्वार।
सयम बिन कोई जतन, करे न बेडा पार ।।३।।

विश्व मे दो प्रकार की विचारधाराए मिलती है–भौतिक और ध्यात्मिक। मार्ग भी दो है–प्रेयस व श्रेयस। पुद्गल, शरीर, इन्द्रिय, षय भोग पोषण का मार्ग प्रेयस है, जबकि आत्मा के लिए हितकारी ल्याणकारी त्याग वैराग्य का मार्ग श्रेयस है। एक भोग प्रधान है तो सरा त्याग प्रधान। एक आत्मा का पतन करने वाला है, तो दूसरा त्थान। इन दोनो मार्गों को, उनके परिणामो को, भली भाति सूक्ष्मता से मझकर, जो आत्मार्थी होते है, वे सयम मार्ग को अपनाते है, जबकि द्गलानंदी एव भवाभिनदी जीवो को प्रेयस मार्ग ही पसन्द होने से, वे सके विषय कषाय के दलदल मे फॅसकर ससार–समुद्र मे ही गोते ाते रहते है। वे काम भोग के मीठे किपाक फल के समान रस मे ोलुप हो चितामणि जैसे दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर भी व्यर्थ मे गॅवा ते है, इसी कारण ज्ञानी कहते है–

मीठे–मीठे काम भोग मे फॅसना मत देवानुप्रिय,
बहुतर कडवे फल पीछे, होते है देवानुप्रिय।
मीठे–मीठे काम भोग मे फॅसना मत देवानुप्रिय ।।टेर।

जैन धर्म शुद्ध सनातन होने से, सयम मार्ग की विशेष प्रे देता है। इसीलिए जैन धर्म मात्र निवृत्ति प्रधान ही नही, उसमे प्रवृत्ति भी स्थान है। किससे निवृत्ति और किसमे प्रवृत्ति हो, इसको स्पष्ट क हुए बताया है–

"एगेओ निवत्तेण एगेओ पवत्तेण।
असमजमे निवत्तेण, सजमे य पवत्तेण।।"[१]

अर्थात् एक से निवृत्ति और एक मे प्रवृत्ति करे। असजम निवृत्ति और सजम मे प्रवृत्ति करे।

सयम ससार के समग्र धर्मो का सार है, सत्य है और उत्तम धर्मों का समावेश इसमे हो जाता है। यह समस्त ज्ञान का भी स है कहा है–एव खु णाणिणो सारं ज न हिसई किचण। अहिसा समय एयावत वियाणिया।"[२] अर्थात्

ज्ञानी के ज्ञान सीखने का सार यही है कि वह किसी भी प्राणी हिसा न करे। अहिसा का सिद्धान्त ही सर्वोपरि है। इतना ही विज्ञान

सयम का अर्थ ·

स+यम= संयम। 'स' का अर्थ अच्छी तरह भली भाँति, स व विवेकपूर्वक तथा 'यम' का अर्थ है मन, वचन व काया पर नियत्र अर्थात् विवेकपूर्वक समता सहित यम का पालन सयम है। सयम मे प्रवृत्त, जागृत साधक को ही मुनि कहा है–'सुत्ता अमुणी मु सया जागरति।"[३] अर्थात् सोने वाले अमुनि और मुनि सदा जागृत

---

१ उत्तरा. ३१/२ । २ सूत्र कृताग /४९
२ आचाराग ३/१/१०६ ।

ंयम का उदात्त अर्थ है– अपने तन, मन, इन्द्रियो व कामनाओ पर
। आधिपत्य स्थापित करना, उन पर विजय प्राप्त करना । यह तभी
है, जब सयमी सजग रहे। कहा है–

"त्यागी के गुण तीन है भोगी के गुण दो।।
नियमी निर्मोही सजग विषयी कामी दो।।"

की व्याख्या :

(i) 'कषाय योग निग्रह संयम.।'[1] अर्थात् कषाय एव मन, वचन,
रूप योगों का निग्रह करना ही सयम है। इसमें अल्पाधिक निग्रह
यम असंख्यात प्रकार का होता है। किन्तु जो इन्हे सर्वथा क्षय कर
है, वह अनुत्तर संयम को उपलब्ध होता है।

(ii) 'सयमन संयम।'[2] अर्थात् उपयोग को पर पदार्थों से
र, आत्म सम्मुख करना, अपने मे सीमित करना सयम है। उपयोग
–सम्मुखता–स्वलीनता ही निश्चय संयम है।

(iii) सम्यक् ज्ञान के आधार पर स्वयं का स्वय पर अनुशासन
संयम है।

(iv) 'आत्मानि प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। अर्थात् जो
की आत्मा के प्रतिकूल हो ऐसा व्यवहार दूसरों के साथ नहीं करना
है।

(v) अहिंसादि पांच महाव्रत धारण करने, इर्या आदि पांच
ते तीन गुप्ति पालन करने, क्रोधादि कषायों के निग्रह करने व स्पर्श
पांच इन्द्रियो के विजय को संयम कहते है।[3]

ार्थ सूत्र अ ६, गा ४६।
ला पुस्तक १, खण्ड १, भा १, सू ४।
न सिद्धान्त प्रवेशिका प्रश्न ५१६ से

संयम बंधन नही है– वस्तुत संयम बधन नही है। वह तो पर पुद्गल की पराधीनता से आत्मा को स्वतन्त्र कर सच्चा स्वराज(आत्मिक शासन) देने वाला है। महात्मा गॉधी के शब्दों में "वह स्वतन्त्रता का द्वार है।" जैसे जूते, कवच, मौजे, वस्त्र आदि बंधन नहीं, वरन् हमारे शरीर के रक्षक है, वैसे ही सयम भी आत्मा का कवच है, सच्चा रक्षक है।

संयम के भेद :

संयम दो प्रकार का –(१) इन्द्रिय सयम और (२) मन संयम। पांचो इन्द्रियों व मन पर नियत्रण रख, उन्हें विषयो मे न जाने देना इन्द्रिय संयम है। कहा है–

"इन्द्रियो के न घोडे, विषयो में अडे,
जो अडें भी तो, सयम के क़ोडे पडे।
तन के रथ को, सुपथ पर चलाते रहे,
सिद्ध अरिहन्त में मन रमाते चले।।"

वस्तुतः सयत इन्द्रिया जीवन मे सुख–शान्ति और असंयत इन्द्रियां अशान्ति का सृजन करती है। स्वामी शकराचार्य ने तो इन्द्रियों को चोर से भी अधिक भयकर माना है। चोर जिस घर मे जिसके साथ रहता है, उसके चोरी नही करता। उसे कष्ट नही पहुॅचाता। किन्तु इन्द्रियां तो आत्मा के आश्रित रहकर भी आत्मा को ही धोखा दे देती और सुख के बजाय दुखो मे ला पटकती है। अत. इन्द्रियो को सदा संयमित रखें।

मन का संयम बडा दुष्कर है। कारण मन बडा चचल है। दस चचलो में मन सर्वाधिक चंचल होता है। दस चंचल इस प्रकार हैं यथा

"मनो, मधुकरी, मेघो, मानिनी, मदनो, मरूत।
मा, मदो, मर्कटो, मत्सो, मकारा दस चंचला।।"

मन के लिए उर्दू मे भी कहा है–

"मस्जिद तो बनाली क्षण भर मे, ईमा की हरारत वालो ने।
मन अपना पुराना पापी है, बरसो मे नमाजी हो न सका।।

योगी आनन्दघनजी ने भी भ कुन्थुनाथ की स्तुति करते हुए के विषय मे कहा है :–

कुथु जिन मनडो कबहु न बाजे–२ ।
ज्यो–२ जतन करीनै राखु त्यो–२ अधिको भाजे ।। कुथु।।
रजनी वाशर बसती ऊजड, गयन पयाले जाय ।
सॉप खायने मुखडो थोथो, ए ऊखाणो न्याय ।। कुंथु।।
मै जाणु ए लिग नपुसक, सकल मरद ने ठेले ।
बीजी बाता समरथ छ नर, एह ने कोई न ठेले ।। कुथु।।

अर्थात् हे कुथुनाथ प्रभो ! मन वश नही होता है। जितना यत्न हूँ उतना ही अधिक भागता है। यह रात दिन बस्ती, ऊजड, पाताल, सर्वत्र जाता है। फिर भी जैसे सर्प का मुँह तो खाली ही है, वैसे ही यह मन है। हे प्रभो ! मै जानता हूँ कि मन नपुसक है, भी यह सारे पुरुषो को हराने वाला है। अन्य बातो मे पुरुष समर्थ है। पर इसको कोई पराजित नही कर सकता है।

इस मन को सयमित कैसे किया जाये ? इस हेतु दो दृष्टान्त देये जाते है–

(१) **तान्त्रिक का दृष्टान्त** . किसी तान्त्रिक ने एक भूत को सिद्ध ृया। भूत निरन्तर काम चाहता था। यदि उसे काम नही बताया तो वह तन्त्रवादी पर आक्रमण करने लगता। तन्त्रवादी जो भी बताए, वह उसे पल भर मे पूरा कर देता। आखिर तन्त्रवादी को ुक्ति सूझी। भूत से एक लम्बा खभा गडवाया। फिर उसे कह दिया क मै कुछ आदेश न दूँ तब तक तुम इस पर चढो–उतरो। हमारा

मन भी भूत है। उसे निरन्तर कुछ चिंतन–मनन का काम चाहिये। उसे खाली मत रहने दो वरना वह शैतान हो जाता है। उसे सदा ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय, जप–तप में लगाये रखो।

(२) **जिनदास का घोडा** · चम्पानगरी में एक जिनदास श्रमणोपासक रहता था। वह घोडे पर सवार होकर नित्य प्रातः पौषधशाला जाता, सन्तों के दर्शन प्रवचन के बाद घर आता, फिर दुकान जाता, और शाम को घर लौट आता। घोडा इतना सध गया था कि प्रथम एडी लगाते ही पौषधशाला, दूसरी एडी लगाते ही घर, तीसरी एडी ही लगाते दुकान व चौथी एडी लगाते ही पुन घर को लौट आता। एक बार एक चोर ने रात्रि में घोडे को चुराकर ले जाने हेतु उसे खूंटे से खोलकर उस पर सवार हो उस पर एडी लगाई तो वह सीधा पौषधशाला जा कर रूका। चोर ने पुनः एडी लगाई तो वह घर आ गया। चोर ने बहुत प्रयत्न किया पर वह घोडा घर, पौषधशाला व दुकान के ही चक्कर लगाता रहा। चोर को आखिर घोडा छोड भागना पडा। हमारा मन भी घोडा है। इसे इतना साध लिया जावे कि वह कुसंग में कभी जावे ही नही, उसे कुसग रूपी चोर कभी ले जा ही न सकें। मन को वश मे करने से सभी वश में हो जाते है। इसीलिए मन वश करने वालो को सच्चा वीर कहा है–

"भाषा तो संयत भली, सयत भला शरीर।
जो मन को वश मे करे, ते संयमी वीर।।"

सयम के तीन भेद :

संयम के तीन भेद भी है–

(१) **कषाय निमित्तिक :** जहॉ तक कषाय का सम्बन्ध है, वहाँ तक के सभी सयम स्थान कषाय निमित्तिक कहलाते है। कषाय की मन्दता में संयम वृद्धि और तीव्रता से सयम मे हानि होती है।

(२) **योग निमित्तिक** · जहाँ कषाय न रहे मात्र योग रह जावे सभी सयम स्थान योग निमित्तक कहलाते है।

(३) **अयोगी** . कषाय व योग दोनो के सर्वथा निरोध हो जाने : जो स्थिति होती है, उसे अन्तिम व अनुत्तर सयम स्थान कहते है।

प्रथम गुणस्थान से दसवे गुणस्थान तक कषाय निमित्तिक, ारहवें से तेरहवे गुणस्थान तक योग निमित्तक व चौदहवे गुणस्थान मे ोगी सयमी होते है।

म के चार भेद [1]

(१) **मन सयम** : इसका वर्णन पूर्व मे किया जा चुका है।

(२) **वचन सयम** : इसका भी बडा महत्व है। रसना इन्द्रिय एक पर इसके कार्य तीन है–(i) बोलना, (ii) खाना व (iii) स्पर्शन। ाका दुरुपयोग न हो इस हेतु प्रकृति ने इसके ३२ दाँतो का परकोटा ा रखा है। पर फिर भी रसना कहती है–

"तुम बत्तीस अकेली मै, तुममे आऊँ–जाऊँ मै।
एक बात जो ऐसी कह दू, बत्तीसी तुडवाऊँ मै।।"

ससार मे पशु पक्षी बोल न सकने के कारण दुखी है पर मानव न कर भी उससे दुख पाता है, क्या यह आश्चर्य नही है ?

रसना कोई ऐसी सख्त वाणी न बोले जो अनिष्टकारी हो, इस प्रकृति ने उसे हड्डी भी नही दी है। कहा है–

"कुदरत को नापसद है, सख्ती जबान में।
इसीलिए दी नही, हड्डी जबान मे।।"

वउविहे सजमे पणत्ते तजहा–मण सजमे, वय सजमे, काय सजमे, उवगरण तजमे–स्थानाग ४/२/३१०।

किन्तु बिना हड्डी के ही मात्र तीन इंच की जबान छ फुट ऊँचे आदमी को मात्र एक शब्द से मारने की क्षमता रखती है। द्रौपदी की रसना के मात्र एक वाक्य ने, जो दुर्योधन के प्रति कहा था, अठारह अक्षौणी सेना का सहार महाभारत में करा दिया था। वह वाक्य था कवि के शब्दो मे–

"प्रकृति के भी इस दुनियाँ मे, कुछ अजब तमाशे होते है।
दृग वालो के दृग होते है, अधो के अंधे होते हैं।।"

द्रौपदी का वाणी विलास लाखो का विलाप बन गया। अतः वाणी पर संयम रखना बहुत आवश्यक है। कहावत है–"बोलबो न सीख्यो तो सारो सीख्यो गयो धूल मे।" कैसे बोले ? इसके उत्तर में ज्ञानी कहते है–सत्य ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात, न ब्रूयात सत्य अप्रियं अर्थात् सत्य बोलो, प्रिय बोलो किन्तु जो सत्य होकर भी अप्रिय है, वह मत बोलो। वाणी के आठ गुण भी ध्यान मे रखना अति आवश्यक है। यथा-

"अल्प[१] आवश्यक[२] मीठा[३] चतुरा[४], मर्म न कारी[५] भाषा बोले।
श्रावक सूत्र[६] सिद्धान्त–न्याय[७] से, सर्वहितैषी[८] भाषा बोले।।"

:.प.^ के लिए सावद्य वाणी का उपयोग भी वर्जित है कहा है–

"सावद्य निर्वद्य वचन का, है नही जिसको ज्ञान।
उचित नहीं है बोलना कैसे दे व्याख्यान।।"

(३) **काया सयम :** 'शरीर खलु धर्म साधनम्' के अनुसार काया धर्म साधना मे महत्वपूर्ण निमित्ति है। सयम से काया निरोग रहती है। डॉक्टरो का मत है कि अधिक खाने से अधिक मरते है। बीमारी से मनुष्य कम मरते है। अत पेट को लेटरबॉक्स नही बनाना चाहिये। खाने के विषय मे अज्ञानी कहते है–

"परान्न प्राप्य दुर्बुद्धे, शरीरं मा दया कुरू।
परान्न दुर्लभ लोके, शरीर ही पुन ।।"

अर्थात् जो अन्न पर के निमित्त से मिल रहा है उसे पाकर शरीर ! दया मत कर। कारण लोक मे परान्न दुर्लभ है, शरीर तो पुन. पुन ल जाता है।

कहते है यूनान मे भोजन की थाली के साथ पक्षियो के पख भी ये जाते थे ताकि भोजन बहुत पसन्द हो तो उसे वमन कर पुन खाया । सके। सम्राट नीरो कम से कम बीस बार दिन मे भोजन करता था, था दो चिकित्सक उसे सिर्फ पुन पुन वमन कराने हेतु साथ रहते थे।[1] न्तु अधिक भोजन की यह विचारधारा मूर्खतापूर्ण व डूबोने वाली है। त्मार्थी के लिए तो अल्पाहारी होने का बडा महत्व है। म० बुद्ध ने भी हा है–" एक बार खाने वाला महात्मा, दो बार खाने वाला बुद्धिमान र दिन भर खाने वाला पशु है।" अल्पाहार के विषय मे कहा है–

"थोवाहोरो थोव भजियो, य जो होइ थोव निद्धोय।
थावो बहि उवगरणो, तस्स देवावि पणमति।।"[2]

यमी का आहार कैसा हो इस विषय मे ज्ञानी कहते है–

"हिया हारी मिया हारी, अप्पाहारी य जे नरा।
न ते विज्जा भि गच्छति, अप्पाण ते तिगिच्छगा।।[3]

अर्थात् जो हित मित व अल्प आहार करने वाले है, ऐसे त्मार्थियो को वैद्य के पास नही जाना पडता है। संयमी शरीर से भी ण्य और निर्जरा का लाभ उपार्जन कर लेता है। कहा है–

"तुलसी काया खेत है, मनसा भया किसान।
पुण्य पाप दोउ बीज है, बुवै सो लुते निदान।।"

साधक शुभ भावो से पुण्य व शुद्ध भावो से निर्जरा कर लेता है।

महावीर वाणी भा ३ पृ ३६५ आ रजनीश कृत।
आवश्यक निर्युक्ति १२६५। ३ ओघ निर्युक्ति ५७८

(४) **उपकरण संयम :** संयम साधने की वस्तुएँ आसन, पृ
माला आदि का संयम रखें, तथा उन पर मूर्च्छा भाव न रखे।

संयम पालन की अपेक्षा से भी संयम के चार भेद होते है–

(१) मोमवत्, (२) लाखवत् (३) काष्ठवत् व (४) मिट्
गोलेवत्। उत्तम सयमी मिट्टी के गोलेवत् संयम में दृढ होते हैं। उदाह
कांधला की एक घटना है। सूर्यास्त समय एक मुनि विहार कर
वहॉ पहुचें। एक हलवाई दुकान बंद कर जा रहा था । मुनि ने
दुकान के बाहर छप्पर के नीचे रात्रि में रहने के लिए पूछा
बोला–अभी घर से लौटकर आज्ञा दूंगा। मुनि बोले आप घर हो
तब तक हम यहॉ खडे है। हलवाई को ध्यान नही रहा। मुनि रा
वहॉ खडे रहे। प्रात· मुनि को वही खडा देख दुकानदार चरणों
पडा। मुनि की सयम मे दृढता ने कांधला को जैन स्थानकवासि
क्षेत्र बना दिया।

दूसरी प्रकार से चार भेद–

(१) प्राण संयम (२) इन्द्रिय संयम (३) कषाय सं
(४) मन संयम।[१]

(iv) पॉच भेद : पॉच प्रकार के निर्ग्रन्थो की अपेक्षा से
पॉच प्रकार का है।[२] यथा–

(१) **पुलाक**– मूल गुण व उत्तर गुण मे परिपूर्ण न होक
वीतराग प्रणीत आगम से कभी अस्थिर नहीं होते।

(२) **बकुश**– जो शरीर व उपकरण की विभूषा करे।
कीर्ति चाहे। सुखशीलिया हो व शबल अतिचार दोषो से युक्त ह

(३) **कुशील**– इन्द्रियॉ या कषायवश हो, उत्तर गुणो में

१ तत्त्वार्थ सूत्र अ ६ गा ४८ व ठाणाग ५/३/४४५।
२ विचार रत्नसार प्रश्न ३१ से।

लगावे। विषय विलास में रूचि रखे।

(४) **निर्ग्रन्थ**– 'ग्रथ' का अर्थ मोह है। मोह का जिसके उदय न हो। ये विषयो से सर्वथा उपरत और पूर्ण जागृत होते हैं। ऐसो के लिए कहा गया है –

"जाणिए सव्वहि जीव जग जागा, सव्वहि विसय विलास विरागा।"

(५) **स्नातक**– जो सर्वज्ञ हो चुके हो।

(V) आठ भेद : संयम के आठ भेद भी है–

(१) **प्रेक्ष्य संयम**– मार्ग आदि देखकर प्रवृत्ति करना।

(२) **उपेक्ष्य संयम**– अशुभ को रोक शुभ मे प्रवृत्ति करना।

(३) **अपहृत्य संयम**– संयम मे सहायक वस्त्र, पात्रादि को छोडकर अन्य सभी का त्याग करना।

(४) **प्रमृज्य सयम**–मार्ग आदि को सविधि पूंज, काम मे लाना

(५) **काय संयम** (६) **वचन सयम** (७) **मन संयम** व (८) **उपकरण संयम।**

संयम के दस कल्प : (१) अचेल, (२) औद्देशिक, (३) शैयातर, (४) राज पिण्ड, (५) कृति कर्म, (६) व्रत कल्प, (७) जेष्ठ कल्प, (८) प्रतिक्रमण, (९) मास कल्प व (१०) पर्युषण कल्प। इनकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है–

(१) **अचेल**– वस्त्र न रखना या थोडे रखना।

(२) **औद्देशिक**– साधु–साध्वियो के लिए बनाया आहार।

(३) **शैयातर**– ठहरने हेतु मकान की आज्ञा ले उससे आहार लेना।

(४) **राज पिण्ड**– राज्याभिषेक समय निर्मित या राजा आदि प्रमुख का राजसिक आहार राजपिण्ड कहलाता है।

(५) **कृति कर्म**– प्रथम दीक्षित को बाद वाला वंदन करे, परन्तु साध्वी साधु को पूर्व दीक्षित होने पर भी वंदन करे।

(६) **व्रत कल्प**– महाव्रतों का पालन करना।

(७) **जेष्ठ कल्प**– ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे बडो को जेष्ठ कहते है। साथ हो तो आयु में बडों को प्रथम दीक्षा देनी चाहिये।

(८) **प्रतिक्रमण**– पापों की आलोचनार्थ प्रतिक्रमण का विचार

(९) **मास कल्प**– चातुर्मास को छोड शेष काल मे साधु को बिना कारण के एक मास से अधिक एक स्थान पर नही रहना व साध्वी को दो मास से अधिक नहीं रहना।

(१०) **पर्युषण कल्प**– भाद्र शुक्ला ५ के दिन (आषाढ पूर्णिमा से ४९ दिन पूर्ण होने पर) संवत्सरी पर्वाराधन करना।[1]

संयम के सत्रह भेद : पांच आश्रव त्याग (हिंसा, झूठ आदि) पॉच इन्द्रिय विजय, चार कषाय त्याग व तीन योगों का संयम यो कुल १७ भेद संयम के होते है।[2]

सत्रह भेद दूसरी प्रकार के : नवकाय संयम, तीन योगों का संयम, एक अजीव संयम, एक प्रेक्ष्या संयम, एक उपेक्षा संयम, एक प्रमार्जना संयम व एक परिष्ठापना संयम। यों कुल सतरह भेद सयम के होते है।

निर्दोष संयम पालने का प्रेरक दृष्टान्त : संयम पालने के विषय मे कछुए का दृष्टांत बडा उपयोगी है। उसे जब भी कुछ खतरा

---

१ पचाशक १७ गा. ६ से ४० ।

२ समवायाग १७ व प्रशमरति १७२ ।

नुभव होता है वह तत्काल अपने हाथ–पैरों व सभी अगों को संकोचकर कृति प्रदत्त चोल में छिपा लेता है। खतरा टलने पर वह पुन हाथ, पैर निकाल लेता है। इसी तरह साधक भी जब–२ आवश्यक हो न्द्रिया व मन को गुप्ति रूपी खोल मे गोपित कर लेवे।

संयम का फल : सयम से आश्रव का, पाप का निरोध ोता है– सजमेण अणण्हयत्त जणयइ।'[1]

सयम की दुरूहता–आगमकार कहते है[2]–

"जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउ होइ सुदुक्करा।
तहा दुक्कर करेउ जे, तारुण्णे समणत्तण।।"

अर्थात् जैसे दीप्त अग्नि शिखा का पाना अति कठिन है। वैसे तरूणावस्था मे सयम पालना अति कठिन है। और भी कहा है–

"बालुया कवले चेव, णिरस्साए उ सजमे।
असि धारा गमण चेव, दुक्कर चरिउं तवो।।"
र्थात् "बालू की रेती के सदृश्य सयम स्वाद हीन होता।
यो समझो तलवार धार पर, चलना अति कठिन होता।।"

म का महत्त्व :

(१) **सयम, जीवन गाडी का ब्रेक है** – जैसे लाखो की यवान कार बिना ब्रेक के बैठने योग्य नही है, वैसे ही बिना सयम के वन भी बेकार है।

(२) **संयम से ही महान्** – जो भी महापुरुष होते है, वे सभी गी, संयमी होते है। उनका बाह्य जीवन किसी भी रूप मे हो, पर वे तर में संयमी होते है। उदाहरणार्थ नेपोलियन को ध्यान मे ले ले। वह पन में एक नाई के घर पढता था। छोटे–छोटे काम करता और

उत्तरा २६/२६। २. उत्तरा अ १९ गा ३५ से ४२।

समय बचाकर पढता। नाई की पत्नि ने नेपोलियन के व्यक्तित्व से आकर्षित हो, उससे प्रेम सम्बन्ध करना चाहा। किन्तु वह संयमी रह और संयम से पढता रहा। नाई की पत्नि अपने उद्देश्य में सफलता न मिलने से उसे क्रोधी, रूखा, असभ्य, किताबी कीडा आदि कहती, वह संयम से रहने से उद्विग्न न होता। परिणामत. एक दिन वह संसार का माना हुआ महापुरुष बना।

(३) **संयम से आश्रव का सिन्धु विन्दु रह जाता है**– बिना त्याग प्रत्याख्यान के समग्र विश्व के समग्र जीवों और अजीव पदार्थों के महा क्रिया रूप सिन्धु के पापाश्रव रूपी जल से, सभी अव्रती आत्मा निरन्तर भारी होती रहती हैं। जो सर्व संयमी होते है, वे तो सर्वथा इस पापाश्रव से निवृत्त हो जाते हैं, किन्तु जो देश संयमी (श्रावक), होते हैं उनके भी बीस बिसवा पापक्रिया मे मात्र सवा बिसवा पापक्रिया (बिन्दु रूप में) रह कर शेष छूट जाती है। यह इस प्रकार समझना चाहिए।

प्रथम अहिंसा व्रत लेने से, निरपराधी त्रस जीवो की हिंसा का त्याग होने से, मात्र स्थावर जीवो की हिंसा की दस बिसवा क्रिया रह जाती है। फिर छठा दिशा व्रत ग्रहण से उसकी भी आधी मात्र पांच बिसवा क्रिया रह जाती है। तदनन्तर सातवां व्रत (भोगोपभोग) ग्रहण से, पांच की भी आधी अढाई बिसवा क्रिया रह जाती है। अत में आठवें व्रत अनर्थ दण्ड के ग्रहण से, अढाई की भी आधी सवा बिसवा पापक्रिया मात्र ही आना शेष रह जाती है। इस प्रकार देश संयम से भी सहज महापाप निवृत्ति हो जाती है।

(४) **बिना संयम तप भी सार्थक नहीं**– आगम मे कहा है-

"नाण चरित्त हीणं लिंग गहण च दंसण विहीण।
सजम हीणं च तव जो चरइ निरत्थय तस्स।।"[1]

---

१ श्रमण सूत्र।

अर्थात् बिना चारित्र के ज्ञान, विना सम्यक् दर्शन के मुनि लिंग बिना संयम के तप व्यर्थ है। तप से संयम का महत्त्व अधिक है। तप संयम इन दोनों में संयम श्रेष्ठ और ज्येष्ठ है। बिना संयम के तप ाप होता है। शास्त्रकार कहते हैं– तप उत्कृष्ट मंगल है श्रेष्ठ है जो सा व संयम से युक्त है।[1]

(५) **संयम का दान से भी अधिक फल**– महादानी भी एक संयमी के समान नहीं होता है। शास्त्रकार कहते हैं–

"जो सहस्सं सहस्साणं, मासे–मासे गवं दए।
तस्सावि संजमो सेओ, अदिनस्स वि किंचण।।"[2]

अर्थात् दस लाख गायो का दान प्रतिमास देने वाले से भी एक ो जो कुछ भी नही देता, अधिक श्रेष्ठ है। ऐसा क्यो ? उत्तर है तो कुछ जीवों को अभय दान कुछ काल के लिए ही दे पाता है जिन्हे देता है, वे भी कालान्तर से ब्राह्मण आदि (दान लेने वाले) के म से कसाई के पास पहुच सकते है, पर सयमी (साधु) तो सभी को सदा के लिए अभयदान देता है।

(६) **संयम के लिए देव भी पश्चाताप करते है**– देवता व : भी तीन कारणों से पश्चाताप करते है यथा– मनुष्य भव पाकर भी विशेष श्रुत नहीं पढा (२)अधिक संयम नही पाला व (३) विशुद्ध त्र का स्पर्श नही किया।[3]

(७) **सयम मे अनुत्तर सुख**– भाव पूर्वक संयम की सम्यग् धना से जीव सर्वार्थ सिद्धि से भी अधिक उत्तम अनुत्तर सुख को होता है। ससार मे जो जितना सयमी है वह उतना ही अधिक सुख को उपलब्ध होता है। संयमपालन से सुख मे उत्तरोत्तर

शवे अ १ गा १ ।
उत्तरा अ ६ गा ४०।   ३ ठाणाग, सूत्र ३/२/१७८।

अभिवृद्धि होती है श्री भगवती सूत्र १४/९ के आधार से 'ज्ञान सार' ग्रन्थ में कहा है ' एक मास के संयम वाला वाणव्यंतर के सुखो को, दो मास के संयम वाला भवन पति के सुखों को, तीन मास के संयम वाला असुर कुमार के सुखो को, चार मास के संयमवाला ग्रह नक्षत्र तारों के देवो के सुखों को, पांच मास के संयम वाला चन्द्र सूर्य के देवों के सुखों को, छ मास के सयमी पहिले दूसरे देवलोक के सुखों को, सात मास के संयमी तीसरे चौथे देवलोक के सुखो को, आठ मास के संयमी पांचवे छट्टे देवलोक के सुखो को, नव मास के संयमी सातवे आठवे देवलोक के सुखों को, दस मास के संयमी नववें से बारहवें देवलोक के सुखो को, ग्यारह मास के सयमी अनुत्तर देवों के सुखो को उल्लंघन कर जाते हैं।' एक वर्ष से अधिक के संयमी उत्तरोत्तर सदेह मुक्ति के सुखों का अनुभव करते है। सच्चा सुख पर में न होकर 'स्व' में ही है। इस सबंध मे एक पौराणिक आख्यान प्रस्तुत है। एक बार एक सिद्ध महात्मा से चार भक्तों ने अपने दुख निवारणार्थ अलग-अलग चार वरदान मागे। प्रथम ने धन, दूसरे ने सुंदर स्त्री, तीसरे ने पुत्र व चौथे ने यश कीर्ति का वरदान मांगा। योगी ने चारो को 'तथास्तु' कह कर वरदान दे दिया। कुछ दिनों बाद चारो ही भक्त योगी के पास पहुचे। योगी ने पूछा अब तो सुखी हो? :म ने कहा-" आपकी कृपा से धन तो खूब मिल गया, पर रात दिन उस सुरक्षा की चिन्ता में दुःखी रहता हूं। दूसरे ने कहा-'मुझे सुन्दर स्त्री तो मिल गयी, पर उसके संसर्ग से ऐसा रोग लगा कि जीना भी दुश्वर हो गया।' तीसरे ने कहा-'मेरे पुत्र तो अनेक हो गये पर आज्ञाकारी एक भी नही है।' चौथे ने कहा-'यश कीर्ति तो खूब प्राप्त हो गयी, पर ईर्ष्या की अग्नि से जल रहा हूं।' इस पर योगी ने कहा-'सुख पर-पदार्थों में नही है, आत्मा में ही है, जो सयम से प्राप्त होता है।' इसलिये कहा है-

---

१ भगवती सू श १४ उ० ९ की टीका व ज्ञान सार ग्रथ।

"नवि सुहि देवता देव लोए, नवि सुहि पुढवी पइराया।
नवि सुहि सेठ सेना वइये एगत सुहि साहू वीयरागी।।"[1]

अर्थात् न तो देवता देव लोक मे सुखी है, न पृथ्वी पति आदि सुखी है और न सेठ सेनापति सुखी है। मात्र वीतराग (सयमी) साधु ही एकात सुखी है।

(८) संयम से ही अहिसा आदि धर्मों की पालना होती है– अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह आदि सभी धर्मों का सम्यक् पालन तभी सभव है जब धारक सयम वृत्ति वाला होगा। जैसे सयम नही हो तो खाने, पीने, चलने–फिरने मे भी हिंसा हो सकती है। ज्ञानियो ने सयम पालनार्थ ही शरीर का पोषण करने का विधान किया है कहा है–

"संयम हेतु देहो, धारिज्जइ से कओ उ तद्भावे।
सजममाइ निमित्तं, देह परिपालणड्डा।।"[2]

अर्थात् "सयम हेतु ही शरीर धारण करना पालन करना। क्योकि बिन शरीर के सयम, कैसे धारण करना हो।।

(९) सयम से पापी का भी उद्धार है–ज्ञानी कहते है–

"अपवित्र पवित्र स्याद् दासो विश्वऽश्वना भजेत।
मूर्खो लभेत ज्ञानानि, मक्षु दीक्षा प्रसादत।।"

अर्थात् "दीक्षा सयम के प्रभाव से पापी पावन बनता है।'
सेवक जग स्वामी बन जाता। मूरख ज्ञानी बनता है।।"

(१०) संयम सभी समस्याओं का समाधान है– विश्व मे जो अनगिनत सामाजिक, आर्थिक, खाद्य आदि सम्बंधी समस्याए है और जिनसे प्राणी सत्रस्त है, उन सबका सरल व उत्तम समाधान संयम वृत्ति

---

1 सूक्ति सग्रह 2 ओघ निर्युक्ति।

को अपनाना है। ज्यों–ज्यों असयम बढ रहा है, त्यों त्यों विश्व में युद्ध, संघर्ष बढ रहे हैं। ये संयम से टाले व शान्त किये जा सकते है।

उपसंहार :

जैन संस्कृति संयम प्रधान संस्कृति है। लोक का सार संयम है। कहा है–

"लोगस्स सारं धम्मो, धम्मं पिय नाण सारियं बिंति।
नाणं संजमं सारं, संजमं सारं च निव्वाणं।।"[1]

वस्तुतः संयम सुख का, आत्मोत्थान का व कल्याण का शाश्वत मार्ग है। जबकि असंयम दुख एवं पतन का मार्ग है। एक बार एक गृहस्थ ने एक ज्ञानी महात्मा से पूछा–" महात्मन् ! मैं संसार के विषय परपंचों में इतना अधिक उलझा हूं कि मुझे धर्म श्रवण करने का मौका ही नहीं मिल पाता। मुझे कोई संक्षिप्त सूत्र ऐसा प्रदान करो कि जिससे दुख मिटकर सुख बढता रहे, आत्मा का भी कल्याण हो जावे। तब संत ने गंभीर चिंतन कर एक श्लोक उसे नोट करा दिया जो इस प्रकार है–

"आपदा कथितो पंथा, इन्द्रियाणाम् संयम।
तज्जयो सम्पदा मार्ग, प्रथित पुरुषोतमै।।"

अर्थात्–इन्द्रियों को वश में रखना सुख का व उन्हें निरंकुश छोड देना दुःख का मार्ग है। यहाँ इसी संदर्भ में बहुश्रुत प र श्री समर्थमल जी म सा. विरचित संयम पर एक अनुपम भजन के कुछ पद प्रस्तुत हैं–

संयम सुखकारी, हो जिन आज्ञानुसार संयम सुखकारी।
सुखकारी मंगलकारी, धन्य पाले जो नर–नार।
संयम सुखकारी ।।टैर।।
कर्म मैल को शीघ्र हटावे, आत्मा ना गुण सब प्रगटावे।

---

१ आ. १ निर्युक्ति गा २४४ आ टीका से उदधृत

जन्म–मरण का दु ख मिटावे, होवे परम कल्याण।
संयम सुखकारी ।।१।।
परम औषधि संयम जाणो, तीन लोक का सार पिछाणो।
शुद्ध संयम हृदय मे आणो अनुपम सुख की खान।
संयम सुखकारी ।।२।।
काम कषाय को तजै हुलसाई, निदा विकथादि छिटकाई।
तप सयम मे लीन सदाई, धन्य तेहनो अवतार।
सयम सुखकारी ।।३।।

इस प्रकार सयम का स्वरूप व महत्त्व समझ कर यह ध्यान मे लेना आवश्यक है कि जहॉ सम्यक् ज्ञान दर्शन हमारे पथ प्रदर्शक है वहॉ सयम हमारे अन्तर बाहर के सभी प्रकार के शत्रुओ से रक्षा करने मे हमारा अद्वितीय अंगरक्षक है। जिस तरह युद्ध मे योद्धा के लिये कवच रक्षक होता है, उसी तरह साधक के लिये न केवल बाह्य शत्रुओ से वरन् कर्मों से युद्ध करते मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, प्रमाद व अशुभ योग आदि आतरिक प्रबल महाशत्रुओ से आत्मा की रक्षा करने मे सयम अत्युत्तम अमोघ कवच है। जो भी प्राणी इसे धारण करता है उसके सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप रूप अनमोल रत्न सुरक्षित रहते है, जिससे उसकी आत्मा कर्म रूपी दुर्दान्त शत्रुओ को पराजित कर मोक्ष रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करने में सफल होती है।

अन्त मे यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि पुण्योदय से चार बडी उपलब्धियॉ मिलती है–तन, मन, वाणी व धन। इन चारों के साथ चार बडे रोग लगे है। यथा–तन का रोग व्याधि, मन का रोग आधी, वाणी का रोग स्वादी तथा धन का रोग उपाधि। इन चारों रोगो की एक ही दवा है 'समाधि'। यह समाधि संयम से ही प्राप्त होती है। वस्तुत संयम जीवन का वास्तविक सौन्दर्य है, मन का माधुर्य है और धर्म का मगलमय प्रवेशद्वार है। अत प्रत्येक आत्मार्थी को सम्यक् प्रकार से सयम की सुआराधना करना श्रेयस्कर है।

----

६. अहिंसा

अहिंसा सब धर्मों का मूल है, सार है। कोई धर्म या पंथ ऐसा नहीं कि जिसमे अहिंसा का स्थान न हो। संसार के समस्त क्रियाकलाप, आचार–विचार और व्यवहार अहिंसा की धुरी पर आधारित हैं। यदि अहिंसा की धुरी न रहे, तो समग्र विश्व अशान्ति, कलह, संघर्ष, मारकाट आदि से साक्षात् नरक बन जाय और शीघ्र महाविनाश और प्रलय हो जाये। अहिंसा के अभाव में एक दिन भी सुख–शान्ति से नहीं रहा जा सकता हैं।

अहिसा क्या है ? इसके स्वरूप को समझने हेतु प्रथम उसके विरोधी शब्द 'हिंसा' को समझना आवश्यक है। कारण हिसा के त्याग का ही नाम अहिंसा है। हिंसा 'हिंस्र' धातु से बना है जिसका अर्थ है हनन। प्राणी के हनन का नाम ही हिंसा है। प्राण दो प्रकार के होते है–द्रव्य प्राण एव भाव प्राण। द्रव्य प्राण के दस भेद है१–(१–५) पांच इन्द्रियों के पांच प्राण, (६–८) मन, वचन व काया बल प्राण, ९–श्वासोश्वास तथा १०–आयुष्य बल प्राण। बिना भावों के इन प्राणों के हनन को द्रव्य हिंसा कहते है। जैसे यतनापूर्वक प्रवृत्ति करते भी कभी ऐसी हिंसा हो जाती है।

भाव प्राणो के चार भेद है–(१) ज्ञान, (२) दर्शन, (३) सुख व (४) वीर्य (शक्ति)। भाव प्राणों के हनन से भाव हिसा होती है। किसी के प्रति अशुभ या अनिष्ट चिंतन भी भाव हिंसा है।

---

१. ठाणांग सूत्र ठा. १, सू. ४८ टीका।

सा के भेद :

(१) **दो भेद**–(**i**) द्रव्य हिंसा व (**ii**) भाव हिसा। अथवा (**i**) त्रस सा व (**ii**) स्थावर हिंसा।

(२) **तीन भेद** – (**i**) मन, (**ii**) वचन व (**iii**) काया से हिसा ना अथवा (**i**) करना (**ii**) कराना व (**iii**) अनुमोदन से हिसा होवे।

(३) **चार भेद – (i) सकल्पी :** इरादे पूर्वक हिसा करना। यह दो प्रकार की होती है – (अ) अपराधी की व (ब) निरपराधी की। पराधी सकल्पी के भी तीन भेद होते है – (क) सापेक्ष (अपने श्रितो के कष्ट निवारण हेतु व शरीर मे उत्पन्न कृमि आदि को कालने मे, अनाज आदि को साफ करने मे होने वाली हिसा) व (ख) पेक्ष (बिना कारण हिंसा करना)।

(**ii**) **आरभी** – भोजनादि कार्यों मे होने वाली हिसा।

(**iii**) **उद्योगी**– व्यापार, खेती आदि मे होने वाली हिसा।

(**iv**) **विरोधी**– प्रतिकार करने से होने वाली हिसा।

पूर्ण अहिसक होने हेतु इन चार प्रकार की हिसा का त्याग वश्यक है। जैसे मुनि होते है। किन्तु गृहस्थ दशा मे अहिसक होकर ना संभव नही है। अत श्रावक धर्म का पालन करने वाले देशत राधक होते है। उन्हे कम से कम सकल्पी–निरपराधी–निरपेक्ष हिसा त्याग तो करना ही होता है। गृहस्थ धर्म के पालक को लक्ष्य कर सी अहिसा के संदर्भ मे ही एक कवि ने बडा सुन्दर कहा है–

"ना जुलम करो ना जुलम सहो, इसका नाम अहिंसा है।
कायर है वे बुझदिल है वे, उनसे बदनाम अहिंसा है।।"

कुछ बधु अहिसा को भी भीरुता या कायरता का रूप बताते । किन्तु ऐसा भ्रामक कथन, अहिसा का सही स्वरूप न समझने वाले

कर सकते है। कायरता व अहिंसा में बहुत बडा अन्तर है। कायरता कायर पुरुषों की कलुषित वृत्ति का नाम है, जबकि अहिंसा, दैवी एवं मानवीय सद्वृत्ति का परिणाम होने से, वीर वृत्ति है, जो दीन दुखियो व निरपराधियों के प्रति उन्हें सुखी करने हेतु, अन्तर हृदय में सहज रूप से कारुण्य एवं वात्सल्य भाव से प्रगट होती है। ऐसी वात्सल्य और लोक कल्याणकारक सद्वृत्ति के धारक सच्चे वीर पुरुष ही होते है। कायर भले ही अपनी कायरता छिपाने को अहिंसा का ढोंग रचे, पर वह सच्चा अहिंसक नहीं होता। सच्चा अहिसावादी व्यर्थ में तो एक चींटी को भी मारने में पीछे हट जायेगा। क्योंकि वहॉ संकल्पज हिंसा है, जिसे वह अपने श्रावकत्व मे दोष और व्रत भग का कारण मानता है पर जब कभी न्याय एवं सत्यरक्षणार्थ रणसग्राम मे जाना पडता है, तो वह वीरतापूर्वक संग्राम करने मे पीछे नहीं हटता और न ही ऐसे संग्राम से उसका व्रत या श्रावकत्व दूषित होता है।

विचारों की अपेक्षा : चार भेद :

अतिचारों की अपेक्षा हिसा के चार भेद हैं—

(i) **अतिक्रम**— हिसा करने का विचार करना।

(ii) **व्यतिक्रम**— हिसा करने को तत्पर होना।

(iii) **अतिचार**— हिंसा करने की सामग्री जुटाना

(iv) **अनाचार**— हिंसा कर देना।

इन चार भेदो का सम्बध मन, वचन, व काया तीनो से है।

हिसा के नव भेद :

द्रव्य एव भाव की अपेक्षा, जिसका विवेचन पूर्व मे किया जा चुका है, हिंसा के नव भेद भी होते है यथा—

(i) द्रव्य से द्रव्य हिंसा।

(ii) द्रव्य से भाव हिसा।

(iii) द्रव्य से द्रव्य भाव हिसा।

(iv) भाव से द्रव्य हिसा।

(v) भाव से भाव हिसा।

(vi) भाव से द्रव्य भाव हिसा

(vii) द्रव्य भाव से द्रव्य हिंसा।

(viii) द्रव्य भाव से भाव हिसा।

(ix) द्रव्य भाव से द्रव्य भाव हिसा।

ा के दस भेद[1] :

'ईर्यावही' के पाठ मे हिसा के दस भेद इस प्रकार बताये गये

(i) **अभिहया** – सामने आते हुए को पैर आदि से ठेस पहुँचाना।

(ii) **वत्तिया** – धूल आदि से ढँकना।

(iii) **लेसिया** – भूमि पर रगडना, मसलना।

(iv) **सघाइया** – इकट्ठे करना।

(v) **सघट्टिया** – पीडा हो, ऐसा स्पर्श करना।

(vi) **परियाविया** – कष्ट पहुँचाना।

(vii) **किलामिया** – खेद उपजाना।

(viii) **उद्दविया** – हैरान करना।

(ix) **ठाणाओ ठाण सकामिया**– एक स्थान से दूसरे स्थान

रखना।

रामायिक सूत्र से।

(x) **जीवियाओ ववरोविया** – जीवन से रहित करना।

हिंसा के एक सौ आठ भेद :

हिंसा करने के मूलतः तीन प्रकार है—सरंभ (हिंसा हेतु विचार करना) समारंभ (तत्सम्बन्धी सामग्री जुटाना) व आरंभ (हिंसा कर देना) इन्हें चार कषाय (क्रोध, मान, माया व लोभ) से गुणित करने पर बारह भेद होते है। इन बारह को तीन योग (मन, वचन व काया) तथा तीन करण (कृन, कारि व अनुमोदन) यो नव से गुणा करने पर कुल एक सौ आठ भेद होते है।

हिंसा के दो सौ तियांलीस भेद :

पाच स्थावर व चार त्रस यो जीव के नव भेद को तीन योग और तीन करण से गुणित करने पर इक्यासी भेद होते है। इन्हें तीन काल (भूत, भविष्य व वर्तमान) से गुणित करने पर २४३ भेद हो जाते है। अविरत जीव को इन सभी प्रकार की हिंसा की क्रिया लगती है, जबकि श्रावक दो करण, तीन योग से त्रस हिसा का त्यागी होने से, उसे मात्र ७२ प्रकार की हिसा (४ x २ x ३ x ३) से वह बच जाता है। स्थावर की हिंसा भी वह अत्यावश्यक होने पर ही करता है।

हिंसा का त्याग क्यो करना ?

ससार मे जितने भी दुःख, शोक, भय, अशान्ति, दुर्भाग्य है, वे सब हिसा जनित है। कारण अहिंसा मे तो शाश्वत आनन्द है। सभी जीव सुख, शान्ति व आनन्द से जीना चाहते है। और इसका एकमात्र मूल आधार अहिसा है। आगमकार कहते है–"हिसा स्व पर दुखदायिनी और शान्ति व सुख की नाशक है, पाप वृत्तियो का बंध करने वाली है। प्रचण्ड रौद्र और नृशस होकर जीवों को परिताप व भयभीत करने वाली है। आर्यत्व से गिराकर अनार्य बनाने वाली है। हिंसा धर्म की घातक

करुणारहित और महान् भय की जननी है। हिसक जीवो को नरक निगोद के भयकर असह्य दुख सहन करने पडते है। इसीलिये हिसा का त्याग करना चाहिये।[1] हिसा के लिये कहा गया है–

"हिसा दुख की बेलडी, हिसा दुख की खान।
अनन्त जीव नरके गया, हिसा तणो फल जान।।"

हिसा के विपरीत अहिसा की आराधना लोक हितकारी, कर्म रज की नाशक व मोक्ष रूप महाफल को देने वाली है। अनन्त भवो और उनके दुखो का नाश करने वाली है।

अहिंसा की व्याख्या :

हिसा के त्याग रूप अहिसा की व्याख्याये शास्त्रकार इस प्रकार करते है–

(१) 'सर्वभूतेषु सयम अहिसा।'[2] अर्थात् सब के प्रति सयम भाव रखना, उन्हे दुख न देना, उनके प्रति मैत्री भाव रखना।

(२) 'समया सत्व भूएसु सत्तू मित्ते वा जगे।'[3] अर्थात् शत्रु या मित्र सभी प्राणियो पर समभाव रखना ही अहिसा है।

(३) 'कर्मणा मनसा वाया सर्व भूतेषु सर्वदा।
अक्लेश जनन प्रोक्ता अहिसा परमर्षिभि.।।'[4]

अर्थात् मन, वचन व कर्म से सर्वदा किसी भी प्राणी को क्लेश न पहुँचाना अहिसा है।

'आत्मन प्रतिकूलानि, परेषा न समाचरेत्।'[5] अर्थात् जो व्यवहार तुम्हे अपने लिये बुरा लगता है, दूसरे के प्रति भी वह ना करे।

---

१ प्रश्न व्याकरण १–१। २ जैन सिद्धान्त दीपिका ६/१।
३ उत्तरा १६/२६। ४ कूर्म पुराण (७६ ८०) तथा ईश्वर गीता।
५ पचतत्र।

इस प्रकार अहिंसा की बडी विशद व्याख्याएं हैं और क्षेत्र विशाल है। इसमें सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि सभी सद्गुण और सद्वृत्तियां भी समाहित हो जाती हैं। इसलिये अहिंसा के अनेक नाम हैं। 'श्री प्रश्न व्याकरण' सूत्र में अहिंसा के साठ नाम उल्लेखित हैं।

अहिंसा की पालना क्यों ?

अहिंसा पाप से बचाने वाली कल्याणकारी, शरणदात्री, शक्ति स्रोत, आनन्द की भंडार और ससार से सुखे-सुखे पार पहुँचाने वाली उत्तम नौका के समान है। अहिंसा की महिमा का वर्णन 'प्रश्न व्याकरण' सूत्र के प्रथम संवर द्वार में किया गया है। अहिंसा की पालना के संदर्भ में आगमकार कहते है-

"सव्वे पाणा पिआउआ, सुहसाया दुक्ख पडिकूला।
जीविउ कामा सव्वेसिं, जीविय पिय नाइवाएज्जकिंचणं।।"[1]

अर्थात् सब प्राणियों को अपना जीवन प्यारा है। सभी सुख चाहते हैं। दुख सब को बुरा लगता है। वध सबको अप्रिय है और जीवन सबको प्रिय है। सब प्राणी जीना चाहते है, सब प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है। अत' किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करे। और कहा भी है-

"सव्वे जीवावि इच्छंति, जीविउं ण मरिज्जिउं।
तम्हा पाणी वहं घोर, निग्गंथा वज्जयंतिणं।।"[2]

अर्थात् सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नहीं चाहता। अतएव निर्ग्रन्थों ने प्राणी वध का निषेध किया है। पूज्य माधवमुनि जी ने इस सूत्रोक्त बात को कविता में तर्कसंगत रूप में देकर बडे प्रभावी ढंग से इस प्रकार कहा है-

"जीव को जीतव ही प्यारो, न तन से होन चाहत न्यारो।

---

१ आचाराग सूत्र। १/२/३/४

२ दशवैकालिक अ ६/९।

दुखी से दुखी होय भारी, मरण तोहे लागे अति खारी ।।
सुरपति को तो स्वर्ग मे, कृमि को विष्ट मझार।
जीतव आशा मरण भय, है निश्चय इक सार।।

जीव को जीवन कितना प्रिय है, इसे आगे स्पष्ट करते हुये हते है–

प्रथम तो प्रिय धन सबही को, लगे धन से सुति अति नीको।
पुत्र से बल्लभ तन जानो, अंग से अधिक इन्द्रिय मानो।।

नयन आदि इन्द्रिय से अधिक पियारो प्राण।
या कारण कोई मत करो, पर प्राणों की हान।।

बुरी है जग मे बेईमानी, दया पालो बुध जन प्राणी।
स्वर्ग अपवर्ग सौख्यदानी।।

भगवान् महावीर ने जगत् के जीवो के कल्याण की मंगल वना से उद्घोषित किया–'जीओ और जीने दो।' इसी को कवि ने विता में प्रभावक ढग से इस प्रकार कहा है–

'जमाना कह रहा हमसे, जीओ खुद व जीने दो।
स्वयं के वास्ते जीना, कोई जीना नही होता।।

ावहारिक जीवन मे अहिंसा :

अनेक बंधु कहते है कि अहिसा का पालन जीवन व्यवहार मे संभव है। प्राय. उनका तर्क होता है–'जीवो जीवस्य भोजनम्।' अर्थात् क जीव दूसरे जीव का भोजन है। किन्तु गम्भीरता से चिंतन करे तो ह बात सही नहीं प्रतीत होगी। वस्तुत यह कथन 'जीवो जीवस्य जनम्' नही है वरन् 'जीवो जीवस्य जीवनम्' है। जिसका अर्थ है एक दूसरे जीव के जीवन में सहायक है, उपकारी है। आचार्य उमास्वामी इस सूत्र से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है–'परस्परोपग्रहो

जीवानाम्।'[१] अर्थात् जीवों का जीवन परस्पर उपकारित है। इस तथ्य को वैज्ञानिकों ने प्रयोग से सिद्ध कर दिया है। वैज्ञानिकों ने एक सर्प व एक पौधे को एक टैस्ट ट्यूब में एयर टाइट बन्द कर दिया। हवा के अन्दर बाहर न आने जाने से दोनों का जीवन नष्ट हो जाना चाहिये था। किन्तु पर्याप्त काल के बाद भी, वे दोनों जीवित पाये गये। कारण यह बना कि पौधे ने जो ऑक्सीजन छोडी, वह सर्प के काम आ गयी और सर्प ने जो कार्बन डाइ ऑक्साइड छोडी, वह पौधे के काम आ गयी। इस प्रयोग से जीवों का जीवन परस्पर उपकृत होना स्पष्ट सिद्ध हो गया। हममें प्रत्येक के जीवन को बनाये रखने मे, अनन्त अनन्त जीवो का उपकार है। कदाचित् जीवन में सहायीभूत सभी जीवों को नष्ट कर दिया जाये तो फिर हमारा जीवन भी नही टिक पाएगा।

कुछ समय पूर्व की एक सत्य घटना है। समुद्र के बीच मे एक द्वीप में सर्प बहुत थे। वहॉ के निवासियों ने उन्हे जीवन घातक समझ सभी को मार डाला। उनके मरने के बाद उस द्वीप मे ऐसी भयंकर बीमारी फैली कि वहॉ मनुष्यों का रहना दूभर हो गया। इस पर जॉच करने वाले बडे–बडे अन्वेषक बुलाये गये। उन्होने खोज कर पता लगाया कि द्वीप की जलवायु दूषित हो गयी है, जिसे ठीक करने हेतु पुन पूर्ववत् सर्पों को वहॉ बसाया जावे। अतः पुन वहॉ दूसरी जगह से सर्प लाकर पाले गये। तब वहॉ का जन जीवन सामान्य हुआ। वस्तुतः प्रकृति ने जितने भी जीव–जन्तुगण बनाये हैं, वे सव हमारे जीवन में प्रत्यक्ष या परोक्ष में सहायक और उपयोगी हैं।

कुछ व्यक्ति यह भी तर्क देते है कि राष्ट्र के पराधीन होने का कारण 'अहिंसा' रही है। यह भी नितान्त असत्य और भ्रामक है। अहिंसा के पालक जितने भी राजा, महाराजा हुये जैसे महाराजा श्रेणिक, अशोक, चन्द्रगुप्त आदि के शासनकाल मे भारत कभी पराधीन नहीं

१ तत्त्वार्थ सूत्र।

हुआ। वरन् उनका काल तो इतिहास में स्वर्णिम काल के नाम से प्रसिद्ध रहा है। इसके विपरीत मुगल बादशाहो ने व अंग्रेजो ने कब अहिसा का पाठ पढाया ? फिर उनके शासन का अन्त कैसे हो गया? वस्तुत, भारत के पराधीन होने का कारण अहिंसा नही, वरन् उस समय की राजनैतिक परिस्थितियां थी।

कुछ सज्जन कहते है, जीवन मे कदम कदम पर हिसा होती है। जैसे चलने मे, बैठने मे बात करने में इत्यादि मे । फिर अहिसा का पालन कैसे सभव है ? ऐसा ही प्रश्न भ० महावीर से गौतम स्वामी ने भी एक बार पूछा था–

"कह चरे कह चिट्ठे कह मासे कह सए।
कहं भुजंतो भासंतो, पाव कम्म न बंधई।।"[1]

अर्थात् प्रभो ! कैसे चले, कैसे बैठे, कैसे सोये, कैसे बोले जिससे पाप कर्म न बंधे।

उत्तर मे प्रभु ने बडा सुन्दर समाधान दिया–

"जय चरे जय चिट्ठे जय मासे जय सए।
जय भुजतो भासंतो, पाव कम्म न बधई।।"[2]

अर्थात् हे गौतम ! जयणा (यतना) से चलने, जयणा से बैठने, जयणा से सोने व जयणा से बोलने से पाप कर्म नही बंधते है।

एक बार एक भाई ने एक विद्वान से पूछा–हम कैसे जीवे ? कारण ***Living is Killing*** (लिविग इज किलिग) अर्थात् जीना जीवो को मारना है। तब विद्वान ने उत्तर दिया– '***Killing Least, Living Best,*** अर्थात् कम से कम प्राणियों का हनन हो, ऐसा जीवन सर्वोत्तम जीवन है।

---

1. दशवैकालिक ४/७ । २ दशवैकालिक ४/८ ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ससार के सभी कार्य करते हुये भी अहिंसा पालन करने में कोई बाधा नहीं है।

अहिंसा का वर्गीकरण :

(१) **सात्विक वृत्ति वाले**– ये प्राय. संत होते है और वे सम्पूर्ण अहिंसा का यावज्जीवन पालन करते हैं।

(२) **राजस वृत्ति वाले**– ये प्रायः श्रावक, सम्यग् दृष्टि व आर्य सस्कार संपन्न गृहस्थ होते हैं। ये जान बूझ कर किसी की हिसा नहीं करते किन्तु अन्याय के प्रतिकार हेतु आवश्यक होने पर संघर्ष करना अनुचित नहीं मानते है।

(३) **तामस वृत्ति वाले**– ये अहिंसा–पालन का दावा तो करते है, किन्तु वास्तव में अहिसा का पालन नहीं करते हैं। ये नामधारी अहिसक होते है। ये अहिंसा का वास्तविक स्वरूप समझते ही नही। ये लोग प्राय अन्याय होते या मॉ–बहिन की इज्जत लुटती देखकर बड़े क्रोधित तो होते है पर कहीं मै मारा न जाऊं, इस भय से चुप्पी साधे रहते हैं। जब कोई इनसे मौन रहने का कारण पूछता है तो कहते है–अहिसा धर्म के पालक होने से हमने उन्हे दण्ड नहीं दिया अन्यथा उन्हे जीवित नही छोडते। पर हमे दया आ गयी। इस तरह मन मे भय भ्रान्त होकर ऐसे कापुरुष बाहर में अहिसा की वातें वनाते है। ऐसे अहिंसा पालक का ढोग करने वाले, तामसिक वृत्ति वाले, नपुंसक के समान होते है। इनसे अहिंसा धर्म वदनाम होता है।

जैन धर्म मे अहिसा का स्वरूप :

जैन संस्कृति की सबसे बडी देन अहिसा है यद्यपि सभी धर्मों में अहिंसा की महिमा गरिमा गाई गई है, फिर भी जो सूक्ष्म गहन विवेचन करते हुये अहिसा का महत्त्व, जैसा जैन धर्म में वताया गया है, वह अन्यत्र नही मिलता है।

जैन धर्म के अनुसार जीव मुख्यत· दो प्रकार के है– त्रस व थावर। त्रस के चार भेद है– बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय व पचेन्द्रिय। थावर के पाच भेद है यथा– पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय। सभी जीव प्राणों के धारक होते हैं। इनमें से किसी भी ाणी का (चाहे वे एकेन्द्रिय हो) प्राण हनन करना या घात पहुँचाना जीव हेसा है। अनेक भोले भाई–बहिन स्थावर पृथ्वी, अग्नि, वनस्पति (अनाज ादि) मे जीव या प्राण नही मानते या उनके हनन मे बहुत कम हिसा ानते है जो भ्रम है। स्थावर एकेन्द्रिय जीव होते है जिनमें चार प्राण ोते है। इन स्थावर जीवो की विराधना मे, इन्हे भी बडी वेदना और दुख ोता है।

गौतम स्वामी ने भ महावीर से पूछा–अहो भगवान् ! स्थावर ीवो को भी क्या दु ख होता है ?

भगवान् उत्तर मे कहते है–अप्पेगे अधमब्भे, अप्पेगे अधमच्छे, प्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे, अप्पेगेगुप्फमब्भे अप्पेगे गुप्फमच्छे प्पेगेजघमब्भे, अप्पेगे जघमच्छे, अप्पेगे जाणुमब्भे, जाव अप्पेगे उद्दवए।[1]

अर्थात् एक जन्माध, गूगा, बहरा तथा अवयवहीन पुरुष जिसके ायी बायी ओर जुदे–जुदे (बत्तीस–बत्तीस) आदमी तलवार लेकर खडे ।। ये सब मिलकर उस आदमी पर अपने शस्त्रो से प्रहार करे, तो जैसे रुष कुछ बोल नही सकता, देख नही सकता, चल नही सकता पर सह्य पीडा का तो अनुभव करता ही है, इसी प्रकार एकेन्द्रिय जीव की ीडा भी आप देख नही सकते है, किन्तु उसको भी वैसी ही पीडा तो ोती ही है। अत स्थावर जीवो की हिसा करना भी पाप है। जिससे विवेकपूर्वक बचना चाहिए।

आगम मे स्पष्ट लिखा हैं' पुढविकाय न हिसति मणसा, वयसा ायेण तिविहेण करण जोएण संजया सुसमाहिया।

---

1 आचाराग, अ 1, उ 1।

अर्थात् पृथ्वीकाय आदि जीवो की मन, वचन व काया से हिंसा मत करो। जो संयमी जीव है, वे तीन करण, तीन योग से इन जीवों की हिसा न करते है न कराते है न अनुमोदन ही करते हैं। अहिसा का इस प्रकार का सागोपाग विवेचन अन्यत्र नहीं मिलता है। अहिंसा जैनधर्म का प्राण है। जैनधर्म की प्रत्येक क्रिया मे चाहे वह साधना की हो या समाज से सम्बन्धित, उसमे अहिंसा का पुट मिलता है। आवश्यक क्रियाओं को अहिंसा से जोडकर, उन्हे प्रवृत्तिधर्म का रूप दिया गया है। जो प्रवृत्तियाॅ अहिंसा की परिधि से बाहर है उनका निषेध कर निवृत्ति धर्म प्ररूपित किया गया है। इस तरह दो प्रकार का धर्म प्ररूपित किया गया है यथा–

"एग ओ विरहं कुज्जा, एग ओय पवत्तणं।
असजमे निवत्तेणं, संजमेण पवत्तेण।।"[1]

अन्य धर्मों मे अहिसा :

सभी धर्मो मे अहिसा के महत्त्व को मानते हुए उसे उत्तमधर्म स्वीकारा है वैदिकधर्म मे कहा है–

"अहिंसा परमोधर्म सर्व प्राण भृतावर।"[2]

अर्थात् सभी प्राणियो के लिए अहिसा सबसे उत्तम धर्म है।

म तुलसीदासजी ने कहा है–

परम धर्म श्रुत विदित अहिसा।
पर निदा सम अध ना गिरिसा।।[3]

अहिसा वास्तव में परमधर्म है। जीवन मे एक विदु धर्म की उतारना हो तो प्रथम अहिसा को अपनाना ही पडेगा। कवीर के शब्दों मे–

---

१ उत्तरा ३१/२
२. आदि पर्व, महाभारत ११/१३। ३ राम चरित मानस।

बकरा पाती खात है, ताकी काढी खाल।
जे नर बकरा खात है, वाको कौन हवाल।।

इस्लाम धर्म मे भी अहिसा के संबंध मे अनेक कथानक मिलते । उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि हाली ने कहा है–

"महरबानी करो तुम अहले जमी पर।
खुदा खुश होगाा तुम पर अरशे[1] बरी पर।।

ी तरह कहा गया है–

"दिल के अन्दर है खुदा, दिल से खुदा नही दूर है।
दिल को सताना ए मिया, उस रब को कब मजूर है।।"

ईसाई धर्म के मुख्य ग्रंथ ' बाइबिल में कहा है–

Thou shalt not kill '

अर्थात् हिसा मत करो।

हेसा और विज्ञान :

आज भौतिक विज्ञान का बहुत विकास हुआ है जिससे मानव सुखसुविधा के साधन बहुत उपलब्ध हो गये है। किन्तु फिर भी नव सुख शान्ति के लिए बेचैन है। दुनिया बारूद के ढेर पर बैठी है। ी भी महाविनाश हो सकता है। विज्ञान के अत्यधिक विकास होने पर मानव अशान्त क्यो है ? इसका मुख्य कारण है विज्ञान का अहिसा साथ समुचित समन्वय न होना। बिना अहिसा के भौतिक विज्ञान नव को शैतानियत की ओर ले जाता है तो बिना विज्ञान का सहयोग ए अहिंसा का सही उपयोग न होने से वह मानव समाज को विकास उत्कर्ष की ओर नही ले जा सकती। भ. महावीर ने आज से अढाई

---

[1] खुदा के रहने का स्थान।

हजार वर्ष पूर्व जब विज्ञान विकसित न था तभी यह कहा था–'विन्न समागमे धम्म साहुण मिच्छिउं।[1]

अर्थात् धर्म (अहिसा) का विज्ञान के साथ समुचित समन्न करना आवश्यक है।

अहिसा का महत्व :

तीनो काल मे अहिंसा के समान धर्म नही होने से अहिं उत्कृष्ट धर्म है। आगमकार कहते हैं–''पर प्राण परित्राणात् परे धर्मो. विद्यते।''[2] अर्थात् दूसरे की प्राण रक्षा से बडा कोई धर्म नही है। रामाय मे भी कहा है–'परम धर्म श्रुत विदित अहिसा।' प्रभु महावीर ने फरमा है– 'धम्मो मंगल मुक्किट्ठ अहिसा सजमोतवो।[3] अर्थात् अहिसा, सं व तप रूपधर्म उत्कृष्ट मंगल है। इन तीनो में भी अहिंसा प्रथम (मुख है। पंचमहाव्रतो मे भी अहिंसा प्रधान है। उसी की विशुद्ध पालनार्थ अ व्रत है। जैसे खेत की रक्षार्थ बाड होती है, वैसे ही अन्य सब व्रत अहि के रक्षार्थ है। जहा पर अहिसा है वहॉ पर शेषव्रत सत्य, 'अचौर्य, ब्रह्मच व अपरिग्रह की नियमा है। अहिसा शान्ति का मूल आधार व आत्मोत्थ मे प्रमुख सहायक है। वैदिक धर्म मे अहिसा को प्रधानता देते हुए उ माता की उपमा दी है। कहा है–'मातेव सर्व भूतानां, अहिसा हितकारिणी जैनागमो मे भी इसी प्रकार कहा गया है–

जेय बुद्धा अतिवक्ता, जेय बुद्धा अणायता।
सनि ते सि पइट्ठाण, भूयाल जगइ जहा।।

'अर्थात् जिस प्रकार जीवो का आधार पृथ्वी है, उसी प्रका पहिले हुए व आगे होने वाले ज्ञानियो का जीवन दर्शन (शक्ति) अहिस है।

---

१ उत्तरा अ २३, गा. ३१।

२ पुरुष परीक्षा २६/२ ।

३ दशवे अ १, गा १।

अहिसा कामधेनु है

योगशास्त्र मे कहा है–

"दीर्घ आयु पर रूपमारोग्य श्लाघनीयता।
अहिसाया फलसर्व किमन्यत्काम दैव सा।।"[१]

अर्थात् दीर्घ आयु, श्रेष्ठ रूप निरोगता एव प्रशसनीयता, ये सब अहिसा के ही दो फल है। वस्तुत अहिसा सभी मनोरथो को सिद्ध करने वाली कामधेनु है।

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री सामत भद्र ने अहिसा को परम ब्रह्म का स्वरूप बताते हुए कहा है–अहिसा भूताना जगति विदित ब्रह्मपरमम्। अर्थात् अहिसा ही प्राणियो के लिए परमब्रह्म या परम सजीवनी है। अहिसा का महत्व दर्शाते हुए ही आगमकार कहते है–

एव खु नाणिणो सार, ज न हिसइ किचण।
अहिसा समयचेव एतावत्त वियाणिया।।[२]

अर्थात् ज्ञानी होने का यही सार है कि किसी भी जीव की हिंसा न करे। यही अहिसा का सिद्धान्त है, ज्ञान की सार्थकता अहिसा की पालना मे है।

राष्ट्रपिता म० गॉधी ने भी अहिसा के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा है–"अहिसा धर्म हम मनुष्यो की प्रकृति का एक कानून है। जिन ऋषियो ने अहिसा का नियम निभाया, वे न्यूटन से ज्यादा प्रतिभाशाली और वेलिगटन से बडे योद्धा थे।" सचमुच अहिसा की शक्ति अपार है।

---

१ योग शास्त्र २/५२ ।
२ सूत्रकृताग सूत्र १/४ ।

उपसहार :

सभी शास्त्रो और महापुरुषो की वाणी का सार अहिसा मे गर्भित होने से अहिंसा सबके लिए कल्याणकारी और मगलकारी है। जैसे पृथ्वी सब जीवों के रहने का आधार है, वैसे अहिसा सब जीवो के लिए शरणभूत और क्षेमकरी है। इसी कारण से इसे माता की उपमा दी जाती है।

भौतिक विज्ञान ने आज जगत को पौद्‌गलिक सुख–सुविधाओ के साधन बहुत उपलब्ध किये है, फिर भी प्राणी सुख–शान्ति के लिए बेचैन है। जगह–जगह सघर्ष, अशान्ति व भय से प्राणी ग्रस्त है। इसका मूल कारण बढती हुई हिंसा है। इस भूतल को हिंसा के नरक और अहिंसा के स्वर्ग में परिणत किया जा सकता है। अत. सुख, शान्ति और स्वर्ग का आनन्द चाहने वाले मानव को भली–भाति यह समझ कर कि अहिंसा का प्रश्रय लेनें में उसकी, जगत की, प्राणीमात्र की भलाई सन्निहित है, अहिसा के सर्वोत्तम राजमार्ग पर अग्रसित होना परमावश्यक है। अन्त में यही भावना है कि–

नगर–नगर हर गॉव मे, कही न हो शैतान।
नम्र अहिंसक बन सभी, भजे सदा भगवान्।।



७. क्षमा

'क्षमा धर्म से बढ कर जग मे, उत्तम कोई धर्म नही है।
क्षमा बिना शुभ कर्म करो सब, तो भी वह शुभ कर्म नही है।।

खामेमि सव्वे जीवा, इस महामत्र का सार यही है।
क्षमा करो और क्षमा माग लो, इससे उत्तम कर्म नही है।।

जब भी बोलो प्रेम से बोलो, सर्व हितैषी भाषा बोलो।
गाठ न बाधो मद मत्सर की, राग द्वेष की ग्रथी खोलो।।"

वैर विरोध दुर्गति के दाता, इस जग मे भी दुख देते है।
क्षणभगुर जीवन है बधु, नही कषायो का विष घोलो।।"

महाकवि क्षेमेन्द्रे ने कहा है–

"नरस्य भूषणम् रूप, रूपस्य भूषणम् गुण ।
गुणस्य भूषण ज्ञान, ज्ञानस्य भूषणम् क्षमा।।"

अर्थात् नर की शोभा रूप है, रूप की शोभा गुण है, गुण की शोभा
है, और ज्ञान की शोभा क्षमा है। इस प्रकार क्षमा सर्वोत्तम आभूषण
ात्मा के दस धर्म कहे हैं जो इस प्रकार है–

खति, मुत्ती अज्जे, मद्दे लाघे, सच्चे वा सजमे।
तवे, चियाय बभचेरे, ए दस यति धम्म।।"[१]

ाणाग सू अ १०, ठा १० तथा जैन सिद्धान्त बोल सग्रह।

अर्थात् क्षमा, सतोष, सरलता, नम्रता, सत्यता, सयम, तप, त
और ब्रह्मचर्य ये दस धर्म है। इन सबमे भी क्षमा धर्म प्रधान व सर्वो
होने से इसे प्रथम स्थान दिया गया है। क्षमा मोक्ष का भव्य द्वार है।
क्षमा है वहाँ परमात्मा का निवास है । कहा है–

जहा दया तहा धर्म है, जहां लोभ तहाँ पाप।
जहा क्रोध तहाँ काल है, जहाँ क्षमा तहाँ आप।।

क्षमा का अर्थ .

क्षमा शब्द 'क्षम्' धातु से बना है जिसके निम्न अर्थ होते

(i) शम अर्थात शमन (उपशमन) । क्रोधादि कषायो का उपश
करना। इसका साधक जीवन मे बड़ा महत्व है। कहा है–

कषाय नी उपशान्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष।
भवे खेद प्राणी दया, त्या आत्मार्थ निवास।।

(ii) क्षम अर्थात् क्षय–नष्ट करना। क्रोधादि कषाय रूप
को बुझाकर समाप्त कर देना। कषाय विजय का बड़ा महत्व है।
स्वामी ने भ० महावीर से पूछा कसाय पच्चक्खाणेण भते जीवे कि ज
हे भगवन्! कषाय त्याग से जीव को क्या लाभ होता है ? भग
फरमाया– 'कसाय पच्चक्खाणेण वीयरागभावं जणयई वीयरागभाव प
वियण जीवे सम सुह दुक्ख भवइ।''[1] अर्थात् कषाय त्याग से वीतरा
उत्पन्न होता है और वीतराग भाव को प्राप्त जीव के लिए सुख दुख
बन जाते है। महानीतिकार चाणक्य ने लिखा है कि क्रोध पर विज
अच्छा है किन्तु उसे आने ही न देना और भी श्रेष्ठ है, कारण ठण्ड
गरम लोहे को काट देता है।

१ उत्तरा २६/३७ ।

(iii) क्षम अर्थात् सम, समत्व भाव मे अवस्थित होना, राग–द्वेष
। होना, सामायिक को उपलब्ध होना । कहा भी है–

समता सर्वभूतेषु, सयम शुभ भावना।
आर्त्त रौद्र परित्यागस्, तद्धि सामायिक व्रतम्।।

सम के अन्य अर्थ सहनशीलता,धैर्यता व विनम्रता भी होते है।

(iv) क्षम् अर्थात समर्थ, सक्षम/समर्थ होकर भी जो अपराधियो
ते क्षमाशील हो अथवा जो इन्द्रियॉ,मन व कषायो को जीतने मे समर्थ
सलिए कहा है–'क्षमा वीरस्य भूषणम्' । वीर का अर्थ है वी+इर अर्थात्
वेशेप रूप से मोक्ष मार्ग (इर) पर भेजे। वस्तुत वही सच्चा वीर

(v) क्षम अर्थात् क्षमा – पृथ्वी की तरह क्षमाशील व धैर्यवान हो।
आत्मा का नैसर्गिक गुण है जब हम स्वभाव से विभाव मे जाते है
ोध द्वेष आदि के रूप मे विकार प्रकट होते है।

अत 'क्षमा' धर्म यथार्थत समझने हेतु उसके विरोधी क्रोध को
ना भी आवश्यक है। कारण क्रोध त्यागे बिना उत्तम क्षमा सम्भव
है। वौद्ध धर्म मे कहा है–'बैर से बैर कभी शान्त नही होते। अबैर
से ही बैर शान्त होते है। यह शाश्वत नियम है।[१] क्रोध सबसे बडा
है। कहा है–

क्रोध बडा चण्डाल, कि आख्या कर दे राती।
क्रोध बडा चण्डाल, धुजावे थर–थर छाती।।

क्रोध बडा चण्डाल, फोड दे हाण्डी कुण्डा।
क्रोध बडा चण्डाल, नरक मे ले जाय उण्डा।।

म पद १/५।

जगत् मे जितनी भी आत्महत्याएँ होती है वे अधिकांशतया क्रोधावेश में होती हैं । क्रोध मे व्यक्ति अन्धा और बेभान हो जाता है। अंग्रेजी में कहा है–**"An angry man shuts his eyes & opens his mouth"** अर्थात् एक क्रोधी व्यक्ति अपनी आँखे बन्द कर लेता है और मुँह को खोल देता है। क्रोध महाअग्नि है जिसमे सब कुछ भस्म हो जाता है। कवि ने बडा ही सुन्दर कहा है–

सूरज की गर्मी जला सकती नहीं इन्सान को।
(पर) क्रोध की गर्मी राख कर देती है इन्सान को।।

क्रोध सबसे बडा विष है। एक बार चर्चा हुई कि महावि कि ? सबसे बडा जहर कौनसा है ? वहाँ उपस्थित हकीमजी ने संखिय वैद्यजी ने तालपुट तो डाक्टर ने पोटासियम साइनाइट को बताया। कि एक तत्ववेत्ता ने कहा– 'कोहो महाविष।' वास्तव मे क्रोधान्ध व्यक्ति जिस पर क्रोध आता है, उसी की ओर देखता है, स्वय की ओर नहीं चाहे अपनी ही गलती क्यो न हो, पर दूसरे पर ही दोषारोपण क है । उसे दूसरे के गुण भी अवगुण व स्वय के दोष भी गुण दिखते है उदाहरणार्थ क्रोधी से स्वय से काच का गिलास टूट जावे तो नौकर क कहेगा कि गिलास को रास्ते मे क्यो रखा था ? नौकर कहे कि गिला तो स्वय आपने ही रखा था तो भी कहेगा कि तुमने उसे रास्ते मे से हटा क्यो नही ?

क्रोध का खतरनाक रूप है बैर । यह क्रोध का विकृत रूप जिसे क्रोध का मुरब्बा (अचार) कहा जा सकता है। इससे क्रोध बहुत तक बना रहता है और यह नरक गति का कारण होता है। कहा है–'बैरानुबद्धानरय उवेति।'

क्रोध के मुख्य चार प्रकार है–

(i) अनतानुबधी (तीव्रतम) – यह आत्म भान को नही दिख

देता और दृष्टि को विकृत रखता है । जैसे पर्वत की दरार जो कभी मिलती नही।

(ii) अप्रत्याख्यानी (तीव्र) – यह चारित्र को रोकता है। जैसे सूखे तालाब की दरार जो पुन वर्षा होने पर मिलती है।

(iii) प्रत्याख्यानी (मद) – यह आत्म साधना के उच्च विकास को रोकता है। जैसे पानी बालू की लकीर जो सरलता से मिट जाती है।

(iv) सज्वलन (मदतम) – यह वीतराग परमात्म दशा को रोकता है। जैसे पानी की लकीर जो उसी क्षण मिट जाती है।

क्षमा धर्म की उपलब्धि हेतु क्रोध के स्वरूप को समझ उसका त्याग करना अनिवार्य है। क्रोध कैसे छूटे व सच्चे क्षमाशील कैसे बनें, इस हेतु ***'Self watch'*** अर्थात् 'स्व अवलोकन', 'स्व' का 'स्व' से निरीक्षण कैसे हो, इस हेतु ***Watch*** (वाच) शब्द पर ही ध्यान पूर्वक चितन करे तो उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। ***Watch*** मे पाच अक्षर है। इन पर इस प्रकार चितन करे–

W=Words 'वर्डस' का प्रतीक है अर्थात् ***'watch your words'*** अपने शब्दो पर चितन करे।' कहा भी है–

"बोली बोल अमोल है, बोल सके तो बोल।
पहली हृदय तोल कर, पाछे बोली बोल।।"

A='Action' 'एक्शन का प्रतीक है। अर्थात् ***'Watch your actions'*** अपने क्रियाकलापो पर चितन करे।' हमारे समग्र कर्म सम्यक् सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के अनुरूप होवे।

T=Thought' 'थाट' का प्रतीक है। अर्थात् ***'Watch your Character'*** अपने चारित्र पर चिंतन करे। हमारा चारित्र भी सम्यक् होवे।

H = '*Heart* 'हार्ट' का प्रतीक है। अर्थात् *Watch Your Heart'* अपने हृदय पर चिंतन करे। हृदय स्वच्छ दर्पण की तरह रागद्वेष रूपी कचरे से रहित होवे। कहा भी है–

"लाख बात की बात यह, तो को दूँ समझाय।
जो परमातम पद चहे, तो रागद्वेष तज भाय।।"

आत्मार्थियो को '*Watch*' शब्द के इस भावार्थ पर गम्भीरता से चिंतन करना चाहिए तथा जिस तत्व की जीवन मे कमी हो, उसे जीवन मे लाने का प्रयास करना चाहिए। सच्चे क्षमाशील बनने का यह एक उत्तम सूत्र है।

उत्तम क्षमा के कुछ उदाहरण.

(i) भगवान् महावीर– सगम देव ने प्रभु को भीषण उपसर्ग देते हुए पूछा–'मुझे आप कैसा समझते है ?'

प्रभु ने उत्तर दिया–'अच्छा मुनाफे से माल बिकवाने वाले दलाल के समान महान् उपकारी।'

प्रभु द्वारा महान् अपकारी को भी महान् उपकारी मानना, उनकी ०न् क्षमा का अद्भुत उदाहरण है। प्रभु महावीर ने इसी तरह अति क्रोधपूर्वक डसने वाले चण्डकौशिक सर्प पर, कानो मे कीले ठोकने वाले ग्वालिए पर तथा गौशालक द्वारा तेजो लेश्या छोडने व दो शिष्यो को भस्म कर देने पर भी उन सब पर किंचित् द्वेष भाव न रख सब को क्षमा कर अभयदान दिया था।

(ii) गजसुकुमाल मुनि– ये श्री कृष्ण वासुदेव के लघु भ्राता थे। जब ये मुनि बन श्मशान में ध्यानारूढ थे तो सयोगवश सोमिल ब्राह्मण जिसकी पुत्री से इनका विवाह होने वाला था,उधर से निकला। अपने भावी जमाता को साधु बना देख पूर्व बैर से प्रेरित हो वह क्रोधान्ध हो गया और

इनके मस्तक पर गीली मिट्टी की पाल बाध कर धधकते अगारे मस्तक पर ला रखे। मस्तक खिचडी की तरह सीझने लगा, पर फिर भी क्रोध करने के बजाय सोमिल को कर्म निर्जरा मे अनन्य उपकारी समझ, ये ध्यान मे अविचल रहे। इस प्रकार मरणान्तिक घोर वेदना सहकर भी ये क्षमा के भव्य सागर मे तैरते रहे।

(iii) महाराजा उदायन– एक बार राजा चण्ड प्रद्योत ने महाराजा उदायन के आश्रित गुटका नाम की अति सुन्दर दासी व अनिल बैल हाथी का अपहरण कर लिया । इस पर महाराजा उदायन को चण्ड प्रद्योत पर आक्रमण करना पडा। भयकर युद्ध हुआ। महाराजा उदायन की विजय हुई तथा चण्ड प्रद्योत को कैद कर लिया गया। जब महाराजा उदायन वापिस लौट रहे थे, तो मार्ग मे सवत्सरी महा पर्व का दिन आ गया। महाराजा उदायन ने मार्ग मे ही ठहर कर प्रतिक्रमण किया तथा सभी जीवो से क्षमा याचना की। उन्होने बदी चण्ड प्रद्योत से भी क्षमा मागी। इस पर चण्ड प्रद्योत ने क्षमा हेतु उसे स्वतत्र कर स्वर्ण गुटका दासी व अनिल बैल हाथी वापिस चाहे। महाराजा उदायन ने दोनो उसे वापिस कर कैद मुक्त कर दिया। इस पर चण्ड प्रद्योत ने अपना राज्य भी वापिस लौटाने को कहा, तो उन्होने विजित राज्य भी उदार भाव से लोटा दिया।

(iv) तत्वज्ञ बनारसीदास– इन्हे तत्कालीन राजा के दरबार मे अच्छा सम्मान प्राप्त था। एक बार ये राज मार्ग मे बैठकर पेशाब कर रहे थे तो पास खडे सतरी ने इनके थप्पड मार दी और वहा पेशाब करने का उपालम्भ दिया। ये शान्त रहे तथा दरबार मे पहुचे। वहा सतरी ने इन्हे ऊचे आसन पर बैठे देखा तो वह घबरा गया। काटो तो खून नही मिले, ऐसी स्थिति सतरी की हो गई। इन्होने सतरी से पूछा–तुम्हे क्या वेतन मिलता है ? वह करबद्ध बोला–कुसूर माफ हो, मुझे सिर्फ दस रुपये वेतन मिलता है। इन्होने उसी समय राजा से १२) रुपये वेतन करने को कहा। राजा के कारण पूछने पर इन्होने बताया कि इस सतरी ने ईमानदारी

व निष्ठा से ड्यूटी दी है। सतरी भी यह सुन कर गद्गद् होकर इनके चरणो में नतमस्तक हो गया।

(v) महर्षि भृगु– पौराणिक कथा है। एक बार महर्षि भृगु ने ब्रह्मा, विष्णु व महेश तीनों में बडा कौन है, इस हेतु परीक्षार्थ भेष बदल कर क्रम से ब्रह्मा, महेश व विष्णु के पास पहुच, उन्हे बिना नमस्कार किए शब्दो से तिरस्कार करते हुए लात मारी । ब्रह्मा व महेश तो कुपित हुए, किन्तु विष्णु ने उनका पग दबाते हुए यह कहकर कि आपके पैर मे चोट तो नही आई, क्षमा चाही। इसी कथानक पर कहा गया है–

"क्षमा बडन को होत है, छोटन को उत्पात।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात।।"

(vi) बौद्ध भिक्षु आनन्द– भ० गौतम बुद्ध ने अपने प्रमुख शिष्य आनन्द की धर्म प्रचार हेतु जाने से पूर्व परीक्षा की और उससे क्रमशः पूछा–'यदि कोई अपशब्द कहे, पत्थर मारे, थप्पड मारे लकडी का प्रहार करे, जान से मारे तो क्या करोगे ?

आनन्द ने क्रमशः उत्तर दिया– हे भदन्त ! कोई अपशब्द कहे तो क्षमा भाव धारण कर सोचूगा कि इसने पत्थर तो नही मारा। यदि कोई पत्थर मारे तो सोचूंगा थप्पड तो नहीं मारी। यदि कोई लकडी से मारे, तो सोचूगा जान से तो नही मारा। यदि कोई जान से भी मारे, तो सोचूगा धर्म के लिए मरना मेरे लिए सौभाग्य का विषय है।

(vii) हजरत मौहम्मद– ये एक वृद्धा के मकान के नीचे से नित्य गुजरते तो वह इन पर कचरा डाल देती थी। परन्तु ये कभी क्रोध नही करते थे। एक दिन इन पर कचरा नहीं डाला गया। इन्होने सोचा क्या बात है ? बुढिया बीमार पडी थी। इन्होने उसकी सेवा करके दवा आदि की व्यवस्था की। इनके सद्व्यवहार से बुढिया इनकी अनुयायी बन गई।

(viii) म० ईसा– इन्हे फांसी लगाने पर भी विरोधियो के प्रति क्रोध नही आया। शूली पर भी इन्होने प्रभु से प्रार्थना की– 'हे प्रभु! इन्हे क्षमा कर देना, ये नही जानते कि ये क्या कर रहे है ?

(ix) स्वामी दयानन्द सरस्वती– इन्होने विष देने वाले नौकर को भी, उस पर दया लाकर कि मेरे भक्त कही मारे नही, धन देकर उसे चुपचाप अपने निवास स्थल से रवाना कर दिया। विष देकर मारने वाले को भी अभय दान देकर उसे धन सहित विदा करना, क्षमा का अनूठा उदाहरण है।

(x) गणधर गौतम की क्षमा याचना–एक बार भ० महावीर के साथ गणधर गौतम स्वामी भी वाणिज्य ग्राम मे पधारे। वहॉ आनन्द गाथापति के सथारे की चर्चा सुन, गौतम आनन्द से मिलने उसकी पौषध शाला गए। आनन्द ने गौतम स्वामी को वदन किया, फिर पूछा–भगवन्! क्या गृहस्थ को अवधि ज्ञान हो सकता है ? उत्तर मे गौतम स्वामी ने हो सकता है कहा तो आनन्द बोले–भगवन्! मुझे भी अवधि ज्ञान हुआ है जिसके कारण मै पूर्व, पश्चिम व दक्षिण दिशाओ मे समुद्र मे पाच सौ योजन तक, उत्तर मे चुल्ल हिम पर्वत तक, उर्ध्वलोक मे सौधर्म कल्प तक और अधोदिशा मे लोलुच्य नरक वास (प्रथम नरक रत्नप्रभा) तक देख रहा हू। गौतम ने कहा–इतना अवधि ज्ञान गृहस्थ को होना सभव नही है। तुम्हारा कथन भ्रान्त प्रतीत होता है। अत आलोचना प्रायश्चित लेना चाहिए।

आनन्द ने सविनय निवेदन किया–"भगवन्! क्या निर्ग्रन्थ शासन मे सत्य के लिए भी प्रायश्चित का विधान है ?'

गौतम ने कहा–ऐसा तो नही है, पर तुम्हारे कहने का तात्पर्य क्या है ?

आनन्द ने कहा–भगवन्! मैने जो कुछ कहा वह यथार्थ है, किन्तु

आप श्री उसे मिथ्या बता रहे है। अत यह प्रायश्चित मुझे नही, आपको करना चाहिए।

आनन्द के कथन ने गौतम को शकित कर दिया। उन्होने भगवान के पास आकर सारी वार्ता कही, भगवान ने कहा, गौतम आनन्द ने जो कुछ कहा, वह सत्य है। तुमने उसके सत्य को भी असत्य बताया अत तुम शीघ्र उसके पास जाकर क्षमा याचना करो और असत्य के लिए प्रायश्चित करो। भगवान महावीर के प्रधान अतेवासी गणधर इन्द्रभूति गौतम जो हजारो साधुओ के नायक थे, शीघ्र उल्टे पावो आनन्द के पास लौटे और आनन्द से सरलता पूर्वक क्षमा याचना की। आचार्य से भी उच्च भूमिका पर रहे गौतम स्वामी द्वारा एक सामान्य गृहस्थ से क्षमा याचना करना क्षमा का आदर्श उदाहरण है।

(xi) महासती द्रौपदी की आदर्श क्षमा—मात्र क्षमा याचना क्षमा का एक–पक्षीय रूप है। आज प्राय वही प्रचलित है। क्षमा याचना वास्तव मे उत्तम है। अपनी गलतियो के लिए क्षमा मागनी भी चाहिए, किन्तु क्षमा की पूर्णता इसके साथ दूसरो के द्वारा की गई गलतियो पर उन्हे भी क्षमा कर देने से होती है। समभाव से दूसरे की त्रुटियो को भुला देना क्षमा का दूसरा रूप है जो क्षमा याचना से भी कठिन है। क्षमा का प्रथम सूत्र भी यही है–'खामेमि सव्वे जीवा (मै समस्त जीवो को क्षमा करता हूँ।) इस पर द्रौपदी का दृष्टान्त मननीय है।

उसका स्वभाव बडा उग्र था। महाभारत मे जब दुर्योधन भीम की गदा से घायल हो अन्तिम सास ले रहा था तो अश्वत्थामा ने उससे अन्तिम इच्छा पूछी । उसने कहा मुझको पराजय या मृत्यु का दु ख नही है। दु ख है कि पाण्डव का सिर न छेद सका। यदि तुम पाँच पाण्डवो मे से एक का सिर भी ला सको तो मुझे शान्ति मिलेगी। अश्वत्थामा उसी समय रात्रि मे पाण्डवो के खेमे मे गया और छल से द्रौपदी के पाँचो सोते हुए बेटो के सिर काट लाया। दुर्योधन ने कहा–यह तो बडा अनर्थ किया। पाप

गठरी मेरे सिर और चढा दी। इन निरपराध अबोध बालको को मार
ा। दुर्योधन मर गया। दूसरी तरफ पाण्डवो के खेमे मे हाहाकार मच
। द्रौपदी के पाँचो बेटो की हत्या से उसका करूण क्रन्दन
यविदारक था। श्रीकृष्ण और अर्जुन आखिर हत्यारे का पता लगा,
त्थामा को पकड़ लाए। द्रौपदी से जब उसे मारने को कहा तो वह
र्द्र हो गई और बोली–इसे छोड दो ।

इसकी बूढी माँ गौतमी मेरी तरह जीवन भर रोती रहेगी। इसका
। द्रोणाचार्य तो पहिले ही मर चुका है। महाभारत मे एक तरफ द्वेष,
ा, घृणा, अथवा मृत्यु का चक्र चल रहा था। ऐसे समय मे द्रौपदी ने
ने पुत्रो के हत्यारे को क्षमा दान देकर क्षमा का महान आदर्श उपस्थित
ा।

(xii) राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद–आप स्वतत्र भारत के प्रथम
पति हुए है। आपको अपने मित्रो द्वारा भेट किया हुआ एक सुन्दर
त्मक फाउण्टेन पेन जो पत्थर का बना हुआ था बेहद पसद था तथा
से लिखने क़ा कार्य कर कलमदान मे सुरक्षित रख दिया करते थे।
दिन उनके नौकर तुलसी के हाथ से सफाई करते समय वह पेन
कर टूट गया। राष्ट्रपति नौकर पर बहुत नाराज हुए और उसे काफी
। फटकारा तथा उसे सख्त हिदायत दी कि आगे वह उनके कमरे
वेश न करे और न उनका काम करे। तुलसी को बहुत दु ख हुआ।
मायूस होकर बाहर चला गया।

दूसरे दिन राष्ट्रपति जी ने विचार किया कि तुलसी ने जान
कर तो पैन तोडा नही। ऐसी गलती मेरे से भी हो सकती है। भूल
गलती तो मानव का स्वभाव है। फिर तुलसी का क्या दोष ? मैने
क उसे डाटा डपटा। राष्ट्रपति जी को अपने व्यवहार पर पश्चात्ताप
लगा। आखिर शाम को उन्होने तुलसी को बुलाया। भयभीत तुलसी
जोड कर सामने उपस्थित हुआ। राष्ट्पति जी की ऑख भर आई

और बोले–"तुलसी भैया मुझे क्षमा कर दो। तुम्हारी कोई गलती नही होते हुए भी तुम्हें डाटा डपटा। मैं स्वयं दोषी हूँ। मुझे माफ कर दो "किसी तरह तुलसी ने राजेन्द्र बाबू को समझाया तब कही वे सहज हो पाए। उन्होंने तुलसी को पुनः निजि काम पर लगा दिया। भारत जैसे विशाल देश के राष्ट्रपति अपने सेवक से इस प्रकार क्षमा माँगें–यह एक आदर्श है भारतीय सस्कृति का।

(xiii) संत तिरुवल्लुकर–आप तमिलनाडु के एक गाँव मे रहते थे और गृहस्थ दशा मे अपना व्यवसाय–कपडे का करते थे आप से क्रोध और लोभ कोसों दूर थे। एक बार गाँव के लोगो से आपके आत्म सयम की खूब प्रशसा सुनकर एक व्यक्ति ने निश्चय किया कि तिरुवल्लुकर को वह क्रोधित एव उत्तेजित करके बतायेगा।

वह व्यक्ति एक धनी व्यापारी था तिरुवल्लुकर की दुकान पर पहुँच कर चादर हाथ मे ले उसका भाव पूछने लगा। संत ने उत्तर मे कहा–दो रुपये। व्यापारी ने हँसते हुए चादर के दो टुकडे कर दिए और फिर आधी चादर के दाम पूछने लगा। संत ने कहा–केवल एक रुपया। व्यापारी ने पुन चादर के टुकडे कर दिए और दाम पूछने लगा। सत शान्त भाव से दाम बताते रहे। व्यापारी तब तक चादर फाडता रहा जब तक उसके छोटे–छोटे टुकडे न हो गए। सन्त फिर भी शान्त रहे। उनका आत्म सयम देखकर व्यापारी सकपका गया। परन्तु उसने भी हठ नही छोडी। व्यापारी ने अत मे कहा। अब इन छोटे छोटे टुकडो का मै क्या करूँगा ये तो बिलकुल बेकार है। सत ने मुस्करा कर कहा–"आप बिलकुल सत्य कहते है।" व्यापारी को सत की मुस्कुराहट चुभ गयी। उसने दूसरी चाल चली। बोला 'आप पूरे दो रुपये ले लीजिए। सत इस पर विनम्र हो बोले–'तुम्हारे रुपये लेने पर तुम्हारा अहकार बना रहेगा और ये टुकडे भी तुम्हारे कोई काम नही आयेगे। मै तो इन टुकडो की सिलाई कर स्वयं ओढ कर सोने मे काम ले लूँगा। इस प्रकार इसकी उपयोगिता बनी रहेगी और हानिपूर्ति भी हो जायेगी। उस व्यापारी का सारा अहंकार पल भ

चेथडे–चिथडे होकर उड गया वह सत के चरणो मे पडकर अपनी गलती
क्षमा याचना करने लगा।[१]

(ivx) पृथ्वी– क्षमा का सर्वोत्तम उदाहरण धरती माता है।
ती माता का दूसरा नाम 'क्षमा' है। धरती पर लोग कूडा करकट डालते
हल, फावडा, ट्रेक्टर आदि से उसको काटते है परन्तु धरती सब सहन
ती है। सहन ही नही करती बल्कि उपकार करती है। नाना प्रकार
अन्न, फल, मेवे, वनस्पति, चादी , जवाहरात आदि बदले मे देकर हमे
प्रकार से सम्पन्न करती है इसलिए पृथ्वी को क्षमा नाम से विभूषित
ा गया है।

। का महत्व.

(१) परम तप–क्षमा सर्वोत्तम परम तप है। बौद्ध धर्म मे भी कहा
'खती परम तवो तितिक्खा।''[२] अर्थात् तितिक्षा (सहनशीलता) परम
है। ज्ञानियो ने कहा है–

''क्रोड 'वर्ष तक तप तपे, एक सहे जो गाल।
त्याते नफो है घणो, मेटे मन की झाल।।''

एक साधु घोर तप करता है। पचाग्नि तप भी तपता है। दूसरा
ान्य गृहस्थ है पर वह केवल अपशब्द (गाली) समभाव से सह लेता
ो वह तपस्वी साधु से श्रेष्ठ है। इस सन्दर्भ मे एक उदाहरण है –

एक बार तत्व गोष्ठी मे, प्रश्न उपस्थित हुआ कि सबसे बडा
कौन? अनेक उत्तर प्राप्त हुए। किसी ने कहा, जो आचार्य पद पर
किसी ने कहा जिसके सर्वाधिक शिष्य हो, किसी ने कहा जो सबसे
म वक्ता हो तो किसी ने कहा जो सबसे अधिक त्यागी, तपस्वी हो
ादि। अन्त मे एक विशिष्ट तत्ववेत्ता ने उत्तर दिया–सबसे बडा वह

ान दर्शन और सस्कृति परिषद पृ २८। २ विसुद्धि मग्ग.सूत्र ६।२।

है जो दस कडी घूट कटु वचनो को पीकर भी बदले मे वीस घूट अमृत की (मीठी सारभूत तत्व की)पिला देवे। ऐसा क्षमाशील महापुरुष ही कर सकता है।

इस सन्दर्भ मे एक शास्त्रीय उदाहरण प्रस्तुत है[१]–

राजकुमार नागदत्त तिर्यच योनि से मनुष्य हुए थे जिससे उन्हे मुनि होने पर भूख बहुत लगती थी। वे उस पर नियन्त्रण नही पा सके थे। वे एक उपवास भी कभी नही कर पाते जिससे उन्हे लोग भोजनभट्ट कहकर चिढाने लगे। नागदत्त शरीर साधक नही वरन् भाव साधक थे। अत उन्हे क्रोध नही आता था। उनके सघ मे चार घोर तपस्वी भी थे पहिले मासखमण की, दूसरे दो मास की, तीसरे तीन मास की व चौथे चार मास की तपस्या करते थे। एक दिन रात्रि मे एक देवी प्रगट हुई और उसने मात्र नागदत्त को ही वन्दना की। कारण पूछा तो कहा– यह भाव तपस्वी है और क्षमा के महान् आराधक होने से महान् पूजनीय है।

एक बार सवत्सरी के महान् पर्व पर सभी ने उपवास किया पर ये उपवास न कर सके तथा गोचरी लाकर सभी को बताकर व आज्ञा लेकर खाने को उद्यत हुए तो सभी सतो ने उन्हे धिक्कारा व उनके भोजन मे थूक दिया। किन्तु इन्हे तनिक भी क्रोध नही आया। थूक को घृत मानकर गोचरी चुकाली। अपने को धिक्कारते व पश्चात्ताप करते कि मै कितना अधम हूँ जो सवत्सरी को भी उपवास नही कर सका। यो पश्चाताप करते क्षपक श्रेणी पर आरोहित हो, घाती कर्म क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इस प्रकार क्षमा धर्म सर्वश्रेष्ठ तप है। महाभारत मे कहा है–

क्षमा ब्रह्म, क्षमा सत्य, क्षमा भूतच भविष्य।
क्षमा तप, क्षमा शौच, क्षमायैद्, घृत जगत।।

(२) क्षमा परम सुख का स्रोत है– भ० महावीर से पूछने पर कि क्षमा का फल क्या है? प्रभु ने फरमाया–खमावणयाएण पलाहयण भाव जणयई।[२] अर्थात् क्षमा से जीव को प्रसन्नता (विशिष्ट सुख) की अनुभूति

१ नदी सूत्र से।   २ उत्तरा २५/१०

होती है। पाश्चात्य सस्कृति वालो ने भी क्षमा को जीवन का सर्वोत्तम सुख बताया है । कहा है– ***"Who has not forgiven an ememy' has yet not tasted one of the best enjoyment of the life."*** अर्थात् जिसने एक शत्रु को भी क्षमा नही किया उसने जीवन का सर्वोत्तम आनन्द (सुख) अनुभव नही किया। प० नेहरू के शब्दो मे 'बिना क्षमा का जीवन रेगिस्तान है और यह मैने प्रत्यक्ष जीवन मे अनुभव किया है।" क्षमावत सदा सुखी रहता है। कहा है–

क्रोधी कुढ–कुढकर मरे, जैसे अग्नि झाल।
क्षमावत सुखिया रहे, पीवे अमृत घाल।।

(३) क्षमा से कर्म और परिषह जय होते है– दुर्धर्षकर्म और घोर परिषह भी क्षमा के द्वारा सहज जीत लिए जाते है। कहा है– क्षमया क्षीयते कर्म।[१] अर्थात क्षमा से कर्म क्षय हो जाते है। क्षमा का फल बताते हुए प्रभु ने स्पष्ट कहा है–"खतीएण जीवे परिसहे जिणइ।"[२] अर्थात् क्षमा से जीव परिषहो को जीत लेता है।

(४) क्षमा मोक्ष का भव्य द्वार है– 'कषाय मुक्ति किलएव मुक्ति' के अनुसार कषाय त्याग ही मुक्ति है और कषाय त्याग का सर्वोत्तम उपाय क्षमा धारण है । श्रीकृष्ण वासुदेव ने तो 'क्षमा स्वय भगवान का रूप है' ऐसा कहा है। 'महाभारत' मे क्षमा का बहुत बडा महत्व बताया है। कहा है–

"क्षमा ब्रह्म, क्षमा सत्यं, क्षमा भूत च भविष्य।
क्षमा तप, क्षमा शोच, क्षमा येदे, घृत जगत।।"

इस्लाम धर्म में भी 'कुरान' मे हजरत मौहम्मद साहब ने कहा है– 'जो गुस्सा पी जाते है, और लोगो को माफ कर देते है, अल्लाह ऐसी नेकी करने वालो को प्यार करता है।'

---

१ तत्त्वामृत।   २ उत्तरा २६/४६।

(५) क्षमा वीरस्य भूषणम्– क्षमा को दुर्बलता या कायरता का प्रतीक कहना भ्रम है। जो क्षमा के सही स्वरूप को नही समझते, वे प्राय ऐसा कह देते है आत्म विकास के लिए, कषाय रूपी विकारो से अन्तर मानस को निर्मल करने हेतु की गई अनुचित प्रवृत्तियो के लिए, अन्त करण से क्षमा याचना करना भला कायरता या भीरूता कैसे हो सकती है ? महात्मा गाधी कहा करते थे कि दुर्बल की क्षमा या अहिसा तो कायरता हो सकती है, किन्तु सबल एव निर्भय व्यक्ति की क्षमा या अहिसा उसका भूषण है। दुर्वल भी यदि क्षमा को सही रूप मे अपनाता है तो वह भी उसका गुण है और क्षमा वशीकरण मत्र है। वीरो की क्षमा किस प्रकार शोभा देती है, इस विषय मे कवि रामधारीसिह 'दिनकर' की ये पक्तियाँ मननीय है–

"क्षमा शोभती उस भुजग को, जिसके पास गरल हो।
उसको क्या जो दतहीन हो विषहीन हो कायर और सरल हो।।"

जो मनुष्य दूसरो को क्षमा नही कर सकता वह अपने को भी क्षमा नही कर सकता। तन पानी से साफ होता है और मन पश्चाताप के आंसू बहाने से निर्मल होता है?

क्षमा वीर का अर्थ कभी–कभी गलत भी समझ लिया जाता है एक बार क्षमा पर चित्र प्रदर्शनी लगी थी। एक चित्रकार ने 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' शीर्षक से एक महापुरुष द्वारा एक अपराधी का वध करते दिखाया था। उसका भाव था कि महापुरुष ने एक सौ बार क्षमा किया, फिर भी जब एक सौ एकवी बार अपराध किया तो उसका सिर धड से अलग कर बताया कि यदि वह अब भी उसे सजा नही देता तो वह कायर हो जाता जबकि क्षमा तो वीरो की होती है। उस चित्रकार को प्रतियोगिता मे प्रथम पुरस्कार भी दे दिया गया। पर यह 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' का सही रूप नही है। क्षमा के साथ हिसा का औचित्य सिद्ध करना क्षमा का उपहास है।

(६) क्षमा सगठन व एकता का आधार है– सतरहवी शताब्दी ापान के मत्री औचीसान अपने सौ व्यक्तियो के परिवार के साथ रहते न्तु कभी उनमे परस्पर परिवार मे छोटी मोटी बात को लेकर तकरार होती थी। जापान के सम्राट ने जब यह सुना तो आश्चर्य हुआ। सम्राट छने पर उसने बोलने मे असमर्थ होने से (वयोवृद्ध होने से) कापते से कागज पर उत्तर लिखा– सहनशीलता– क्षमा शीलता। इससे का महत्व स्पष्ट है।

(७) क्षमा सर्व गुणो का सार है– क्षमा मे सभी दैवी और मानवीय समाहित हो जाते है। एक कवि ने कहा है–

क्षमा शान्ति हृदय द्वार है, क्षमा भक्ति का सुमन हार है।
क्षमा दिव्य ऐश्वर्य सृष्टि का, क्षमा मनुज का दान अभय है।।

क्षमा हृदय की दिव्य ज्योति है, क्षमा सृष्टि का मोती है।
इसको पा कुछ शेष न पाना, वसुधा दिव्य चमकती है।।

यह कथानक सत्य है कि मानव कभी उतना सुन्दर नही लगता ना उस समय जब वह किसी से क्षमा माग रहा हो या क्षमा प्रदान रहा हो।

बौद्ध धर्म मे तो यहॉ तक कहा है– क्षमा से बढकर अन्य कुछ है– खत्या मिप्यो न विज्जति।[१]

क्षमा मात्र औपचारिकता न हो– क्षमा हृदय की वस्तु है। इसमे ी प्रकार का दिखावा या कपट या औपचारिकता नही होनी चाहिए। व्यवहार से स्थानक उपाश्रय या मदिर मे पहुॅच, प्रतिक्रमण कर बिना र का वैर भाव मिटाए 'सब से खमाते है' ऐसा बोल क्षमापन का नाटक ा उचित नही है। वस्तुत सच्चे अन्त करण से क्षमा याचना होनी चाहिए

सुद्धि मग्ग सू ५/२ ।

तथा भविष्य के लिए सकल्प किया जावे कि सबसे मैत्री भाव रखेगे। किन्तु आज ऐसी सच्ची क्षमा याचना करने वाले बिरले ही मिलेगे। कभी कभी तो प्रतिक्रमण या क्षमावाणी पर्व मे ही झगड पडते है। यह क्षमा का उपहास है क्षमा पर्व मनाते मानते पूरा जीवन हो गया पर वर्षो पुराने विद्वेषता के भाव पथरी की तरह जमे हुए है। आगमकार स्पष्ट करते हैं कि क्षमा धर्म के अनुसार जब कभी किसी से मनमुटाव हो तत्क्षण क्षमा मॉग लेनी चाहिए। कदाचित् उस समय क्षमापन न हो सके तो देवसी प्रतिक्रमण या रायसी प्रतिक्रमण करते क्षमा याचना कर लेनी चाहिए। यदि क्षमापना पक्खी प्रतिक्रमण (पन्द्रह दिन) तक भी न करे तो मुनिपना समाप्त हो जाता है। इसी तरह चौमासी प्रतिक्रमण (चार माह) तक भी क्षमापना न करे तो श्रावकपना और संवत्सरिक प्रतिक्रमण (बारह मास) तक भी क्षमापना न करे तो 'सम्यक्त्व' भी नष्ट हो जाती है। ऐसी आत्मा विराधक ही नही, मिथ्यादृष्टि हो अनंत भव परंपरा को बढा लेती है।

उत्तम क्षमा का स्वरूप

उत्तम क्षमा अन्तर हृदय से द्वेष भाव को सर्वथा निकाल देने पर प्रगट होती है। इस संदर्भ में कहा गया है–

जो गाली सुन चॉटा मारे, वह काया की विकृति वाला है।
जो गाली सुन गाली देवे, वह वचन की विकृति वाला है।।
जो गाली सुन खेद मन में लावे, वह मन की विकृति वाला है।
परन्तु जो गाली सुन मन मे खेद भी न लावे, वह उत्तम क्षमाधारी है।।

उत्तम क्षमा वह है जो मात्र हाथ ही न जोडे वरन् दिलो को जोडे। 'बाइबिल' मे ईसा मसीह ने कहा है– 'प्रार्थना करने हेतु देव मदिर (या चर्च) मे पहुँचे और वहॉ यदि याद हो आए कि अमुक पडौसी से मन मुटाव है, तो आहुति पात्र को देव मदिर के द्वार पर छोडो और पहिले जाकर अपने उस पडौसी से मैत्री करो और उसके बाद ही देवताओ को भेट चढाओ।'

यद्यपि क्रोध के अभाव का नाम क्षमा है तथापि उत्तम क्षमा का संबंध मात्र क्रोध के अभाव से नही वरन् मान, माया व लोभ के अभाव से भी है। इसे समझने हेतु 'क्षमापना सूत्र' पर चितन करना होगा। क्षमापना का पद इस प्रकार है–

"खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेर मज्झ न केणइ।।"

उपर्युक्त पद मे क्षमापना चार प्रकार से उल्लिखित है। प्रथम है– व जीवो को मै क्षमा करता हू। यह भावना क्रोध के अभाव मे प्रगट होती । दूसरा है– सब जीव मुझे क्षमा करे (क्षमा याचना) यह भावना मान पाय के अभाव की द्योतक है। तीसरा है– सब जीवो से मेरा मैत्री भाव । यह भावना मायाचार के त्याग से सम्बधित है। कारण 'माया मित्ताणी सणी' के अनुसार माया मैत्री को नष्ट करती है। अंत मे चौथा है– किसी मेरा वैर भाव नही है– यह भावना लोभवृत्ति के हटने पर होती है। रण लोभाभिभूत व्यक्ति उचित–अनुचित कुछ नही देखता। जिससे –भाव बढा लेता है।

इस प्रकार उत्तम क्षमा की उपलब्धि क्रोध, मान, माया व लोभ रो के त्याग से होती है। वैसे क्षमापना का अर्थ क्षमादिपना से है जिसमे ा के साथ आर्जव, मार्दव आदि सभी आत्मिक गुण समाहित हो जाते और ये गुण सभी कषायो के हटने से उपलब्ध होते है। उत्तम ाधारक सदा समभाव रखता है कहा है–

अरिमित्र महण समान, कचन काच निदव स्तुति करन।
अधवि तारन असि प्रहारन मे, सदा समता धन।।[१]

छह ढाला छद ६, प० दौलतरामजी कृत।

उत्तम क्षमा प्राप्ति के उपाय

उत्तम क्षमा का स्वरूप एव महत्व पर चर्चा करने के पश्चात् जीवन मे उसकी प्राप्ति कैसे हो, यह जानना और समझना बहुत आवश्यक है। मुख्यतः क्रोध एव अन्य कषायो पर सम्यक् नियत्रण कैसे हो जिससे उन पर विजय प्राप्त कर उत्तम क्षमा उपलब्ध हो सके, इस हेतु यहाँ कुछ महत्वपूर्ण उपाय दिये जा रहे है–

(१) भेद विज्ञान से– जीव, अजीव के, स्वपर के, ज्ञेय–ज्ञायक सम्बन्ध को भली भॉति ध्यान मे लिया जावे। आत्मा स्वयं ज्ञायक है अन्य सब ज्ञेय है, समग्र जीव लोक का परिगमन स्वमेव, स्वसचालित है, सुख–दुख, हानि–लाभ, यश–अपयश, जन्म–मरण का कर्ता, धर्ता कोई पर नही है। पर मे कर्तृत्त्व बुद्धि होना मिथ्या है, ऐसी अटूट श्रद्धा अतरंग मे होवे। ससार मे माता–पिता, ज्ञाती–न्याती का औपचारिक कुटुम्ब है। इन्द्रिय, देह, विषय भोग आदि वैभाविक कुटुम्ब है। आत्मा का स्वभाविक गुण ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि उसका सच्चा कुटुम्ब है। इसे जानकर प्रथम के दो कुटुम्ब से राग–बुद्धि त्यागे। जब तक पर मे इष्ट–अनिष्ट कर्तृत्व बुद्धि रहेगी, तब तक क्रोधादि की उत्पत्ति होती रहेगी। पर पदार्थ व द्रव्य अनत है। उनकी अनुकूल प्रवृत्ति न होने पर वे अनत ही क्रोध के पात्र होते है। यही अनतानुबधी है।

(२) कर्म–सिद्धान्त पर आस्था– प्रकृति कर्म ही वर्तमान मे हो रहे सुख–दुख, इष्ट–अनिष्ट आदि के मूलभूत कारण है और ये कर्म स्वय के द्वारा उपार्जित किए हुए है। अत जो भी अनुकूल–प्रतिकूल घटित हो रहा है, उसमें किसी अन्य का कोई दोष नही है। अन्य तो निमित्त मात्र है। जो उदय मे शुभाशुभ कर्म आए है, उन्हे समभावपूर्वक भोगना ही उचित है कारण 'कडाण' कम्माण न मोक्ख अत्थि' बिना भोगे कर्म छूटते नही है। फिर समभाव न रखा तो आगे फिर अशुभ कर्मों का बध होगा। इस प्रकार कर्म–सिद्धान्त को ध्यान मे रखने से 'क्षमा' भाव प्रकट होता है।

इस विषय मे एक दृष्टान्त बहुत उपयोगी है। एक पोस्टमैन एक तार लेकर एक सेठ के पास पहुचा। जिसमे उसका माल का जहाज पुत्र सहित डूब जाने के समाचार थे। थोडी देर बाद दूसरा पोस्टमैन दूसरा तार लेकर सेठ के पास पहुचा। जिसमे माल सहित पुत्र के सुरक्षित शीघ्र लौटने के समाचार थे। सेठ प्रथम तार के दु खद समाचार वाले पोस्टमैन पर क्रोधित नही हुए, तो दूसरे पोस्टमैन द्वारा सुखद समाचार आने को सुख का कारण नही माना। उन्होने सुख–दुख का मूल कारण स्वय का शुभाशुभ कर्म ही माना। जैसे पोस्टमैन निमित्त था, वैसे ही सुख–दुख जिनके माध्यम से मिलते है, वे सब निमित्त है पोस्टमैन की तरह। अत उन्हे पोस्टमैन समझे। इससे समभाव और समाधि बनाए रखने मे बडी सहायता मिलेगी।

(३) **जागृत और विवेकशील रहे–** सदा विवेकयुक्त रहे और प्रमादी न बने। यदि कभी कोई अपशब्द या कटु वचन कहे, तो उसे अज्ञान व मोह का कारण मान कहने वाले को दया का पात्र समझे। ज्ञानी ऐसे मूढतापूर्ण कथनो पर ध्यान नही देते। ज्ञानी विचारता है कि लोक असख्यात शब्दवर्गणाओ से परिपूरित है, उसमे यह भी एक है। ये शब्द मेरे चिपक नही गये है। भला इनसे अरूपी आत्मा की क्या हानि होगी? महात्मा बुद्ध ने भी एक बार भिक्षा जाते समय अपशब्द सुने थे। तब उन्होने यह कह कर कि अतिथि को जो कुछ भेट करो और वह न ले तो वे वस्तुए देने वाले की होती है। अपशब्द बोलने वाले को शान्त कर दिया था। हमे जब कभी ऐसे प्रसग आवे तो इस दृष्टान्त को ध्यान मे रखकर खेद खिन्न नही होना चाहिए।

दुष्ट व क्रूरो मे भी सद्भावना पैदा हो ऐसी क्षमावृत्ति होनी चाहिए। इस पर एक रोचक दृष्टान्त प्रस्तुत है। एक बार एक सत को कुछ भक्तगण हाथो मे दण्ड, पत्थर आदि लिए जाते दिखे। सत ने कारण पूछा तो उन्होने बताया कि उनके मदिर की मूर्ति को दूसरे गाव वाले जो दूसरी सम्प्रदाय

के है, तोड गए है, अत अब हम भी उनकी मूर्ति तोडकर ही लौटेगे। सत ने कहा– "आप भक्त लोग हैं। आपको क्रोध मे ऐसा नही करना चाहिए।" वे बोले– "हमारा क्रोध सात्विक है।" महात्मा बोले– "यह क्या आप शैतान की भाषा बोल रहे है?" भक्त पूछने लगे– "शैतान की भाषा का क्या मतलब होता है?" महात्मा ने उन्हे शान्त हो सुनने को कहा।

महात्मा कहने लगे– "एक सत कारणावशात् नाव मे बैठकर जा रहे थे। कुछ शैतान भी नाव मे थे, जो रास्ते मे सत को छेडते जाते पर वे शान्त थे। शाम को सत प्रार्थना में बैठ गए। शैतानो को अच्छा मौका मिल गया। कोई उन्हे गाली देने लगा तो कोई चप्पल आदि मारने लगा। सत प्रार्थना मे तल्लीन थे। तभी आकाशवाणी हुई– 'प्यारे सत, तू कहे तो नाव उलट दूँ। यह सुन सभी शैतान घबराकर सत के चरणो मे माफी मॉगने लगे। सत प्रार्थना पूरी कर बोले– मेरे प्रभु ! तू भी कैसी शैतान की भाषा बोल रहा है? यदि उलटना ही है तो इनकी बुद्धि उलट दे।" तब पुन. आवाज हुई– "मै बहुत खुश हू। तूने ठीक पहचाना। पूर्व की भाषा मेरी नही थी, जो शैतान भी भाषा पहिचान लेता है, वह मुझे पहिचान लेता है। फिर मै उससे दूर नही रहता।"

इस दृष्टान्त से प्रेरणा ले और ऐसे प्रसंगो पर दुर्जन भी सज्जन हो, क्रूर भी दयावान हो, ऐसी सद्भावना रखे, तो क्षमा भाव बना रहेगा।

(४) निदक आलोचक को उपकारी मानें– स्वय के चेहरे के दाग स्वय को दृष्टिगत नही होते, किन्तु दर्पण मे साफ दिख जाते है। निदक व आलोचक को भी दर्पण मान उन्हे उपकारी माने। म० कबीर ने कहा है –

निदक नीयरे राखिए ऑगन कुटी छवाय।
बिन पानी बिन साबुन, के निर्मल करत सुभाय।।

ईसाई धर्म मे भी कहा है– ***"Love your enemies"***– अपने

शत्रुओ से प्रेम करो।

एक बार एक पादरी ने धर्म सभा मे कहा कि ईसाई धर्म मे जो कहा गया है **"Love your enemies"** इससे बढकर उत्तम बात अन्य किसी धर्म मे ढूढ़ॅने पर भी नही मिलेगी। वही पर जैन विद्वान भी वैठा था। उसने पादरी साहब के उक्त कथन के सदर्भ मे कहा कि संभवत. आपने जेन धर्म का अध्ययन नही किया, अन्यथा ऐसी बात नही कहते। आपके धर्म में तो 'शत्रुओ से प्रेम करो' कहा है, जिसका आशय निकलता है कि प्रथम शत्रु पैदा करो और फिर उनसे प्रेम करो। जबकि जैन धर्म में कहा हे –

'मित्ती मे सव्वभूएसु वेर मज्झ ण केणइ' अर्थात् सब प्राणियो मे मैत्रीभाव रखो, वैर किसी से मत करो। जिसका आशय है कि शत्रु बनाओ ही नही। यह जैन धर्म का कथन ईसाई धर्म के कथन से भी श्रेष्ठ है। पादरी साहब व अन्य सभी श्रोतागण उक्त सैद्धान्तिक कथन सुनकर बडे प्रभावित हुए।

(५) मौन साधना से– क्षमा के लिए क्रोध पर विजय प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। मौन से क्रोध पर सरलता से नियंत्रण हो जाता है। आगमकार कहते है '– 'कोहो उवसमो मौण' अर्थात मौन से क्रोध का उपशमन करो। जब कभी क्रोध आवे तो उसके फल का चितन करते हुए मौन धारण कर लो। ऐसे समय थोडा पानी पी लेना भी ठीक रहता है।

इस पर एक रोचक दृष्टान्त है। एक ग्राम मे एक वृद्धा रहती थी। वह बडी क्रोधी व लडाकू थी। नित्य जब तक वह किसी से लड न ले उसे चैन नही मिलता था। सारा गॉव उससे परेशान था। आखिर गॉव वालो ने मिलकर बुढिया के लिए नित्य एक–एक घर तय कर दिया कि वहा ही जाया करे जिससे अन्य घरो मे अशान्ति न हो। एक दिन ऐसे घर का नम्बर आया कि जिसमें एक दिन पूर्व ही शादी होकर नई बहू

आई थी। जब बहू को पता चला कि एक बुढिया आज इस घर मे लडने–झगडने आने वाली है तो वह सभी घर वालो से अनुरोध कर, उससे निपटने हेतु स्वयं तैयार हो गई। घर मे सास आदि ने कहा कि अभी तुम बच्ची हो, तुम लडना–झगडना क्या जानो? परन्तु वह यह कहकर कि आप सब निश्चिन्त रहे, मै उस बुढिया को ऐसा पाठ पढाऊँगी कि आगे वह लडना–झगडना भूल जाएगी।

यह कह कर उक्त बुढिया के स्वागत हेतु वह कुछ चने व एक लोठा पानी लेकर मकान की पोल (प्रवेश द्वार) मे यथा समय आकर बैठ गई। बुढिया भी समय पर बडबडाती अपशब्द बोलती आ पहुँची। बहू ने उसे आते ही मौन धारण कर ली और उसे दूर से ही अगूठा दिखाने लगी। अगूठा दिखते ही बुढिया का क्रोध भडक उठा और वह उसे कोसने लगी। इस पर बहू थोडे से चने मुँह मे रख चबाने लगी व फिर अगूठा दिखा दिया। अब तो बुढिया और भी क्रोधित हो चिल्लाने लगी। बहू मौन रह सुनती गई व थोडा पानी पीकर फिर उसे अगूठा दिखा दिया। बुढिया का बडबडाना और तेजी से चालू हो गया। लेकिन कब तक ? उसे कुछ उत्तर न मिलने से थोडी देर मे वह फिर थककर चुप हो जाती। परन्तु जैसे ही वह चुप होती बहू उसे चने खाकर या पानी पीकर अंगूठा दिखाकर छेड देती। वह कुछ समय बाद बुरी तरह थककर स्वय को हारी हुई समझने लगी। अन्ततः चिल्लाते–चिल्लाते व अपशब्द बोलते–बोलते उसका गला बैठ गया और परेशानी से झल्लाकर वह वापिस लौट गई। गॉव वाले इस बहू की बुद्धिमत्ता से बडे प्रसन्न हुए, और यह निश्चय किया कि नित्य बुढिया का जिस घर भी जाना हो, उसका वहॉ इसी तरह स्वागत किया जावे। दूसरे दिन जब बुढिया दूसरे घर गई, तो यहॉ भी उसको चने व पानी पीकर पुन–पुन. अगूठे दिखाकर चिढाया गया। इससे वह घबरा गई। तीन चार दिन बाद तो उसने लडने–झगडने हेतु जाना ही छोड दिया। इस प्रकार मौन साधना ने उस बुढिया को ऐसा पाठ पढाया कि उसने लडना–झगडना ही छोड दिया। मौन मे बडी विशेषता है। उर्दू के

कवि जफर ने लिखा है–

"खामोशी मे अमन है, शान्ति है और सफाई है।
यह वह दारु है जो कितने ही मर्जों की दवाई है।।"

(६) सभी को अपनी आत्मा जैसा समझो– 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' के अनुसार सभी को अपनी आत्मवत् समझे तो फिर अपराधी पर भी क्रोध नही आयेगा। जैसे दातो से जीभ कट जाती है, हाथ से ऑख मे लग जाती है, पैर से पैर के ठोकर लग जाती है किन्तु फिर भी दातो, हाथो या पैरो पर क्रोध नही आता। कारण उसमे अपनत्व की भावना होती है। वैसे ही अन्य मे भी अपनी जैसी आत्मा समझ, अपनत्व की भावना रखे तो फिर उन पर भी क्रोध नही आयेगा। वैर से वैर कभी शान्त नही होते। कहा भी है–

"घृणा घृणा से, बैर बैर से, कभी शान्त हो सकते क्या ?
कभी खून से सने वस्त्र को, खून ही से धो सकते क्या ?"

बौद्ध धर्म मे भी कहा है– जो कोई दूसरो को दु ख देकर, सुख चाहता है, वह वैर की लपेट मे पडा जीव वैर से कभी नही छूटता।[१]

उपसहार– ससार के समस्त धर्मों, दर्शनो व सम्प्रदायो के सिद्धान्तो का तथा समस्त वेदो, पुराणो, आगमो, पटिको, कुरान, बाइबिल आदि शास्त्रो का अध्ययन कर सबका सार निकाला जावे तो यह निष्कर्ष निकलेगा कि आत्मा के उत्कर्ष हेतु उसमे निर्मलता, सरलता आवे। इस पर सभी जोर देते है। हमारे सभी आचार और क्रियाकलाप–जप, तप, ज्ञान, ध्यान आदि साध्य नही, साधन है और साध्य है *आत्मिक निर्मलता* की उपलब्धि। यदि विभिन्न त्याग, तप, जप आदि करने पर भी आत्मा मे कषाय घटकर निर्मलता न आवे तो वे निरर्थक है– *मात्र काया क्लेश*

---

१ धम्म पद

हैं। हमे मूल उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कषायों को कृश करना होगा। इस हेतु राग द्वेष छोड उत्तम क्षमा धर्म को धारण करना होगा।

आत्मा से परमात्मा होने का सर्वोत्तम धर्म क्षमा धारण करना है। कहा भी है–

"काहे को भटकत फिरे, सिद्ध होने के काज।
राग द्वेष को त्याग दे, भैया सुगम इलाज।।

राग द्वेष त्यागे बिना, परमातम पद नाहि।
कोटि कोटि जप, तप करे, सबे वृथा ही जाहि।।

लाख बात की बात यह, तौको देउॅ बताय।
जो परमातम पद चहे, तो राग–द्वेष तज भाय।।

अतएव अतरहृदय से, उत्तम भावना से निम्न प्रकार क्षमा याचना माग कर, आत्मा को निर्मल बनाना श्रेयस्कर है। कहा भी है–

"क्षमा याचना प्रथम करे, हम शासन के रखवालो से।
अरिहत सिद्ध आचार्य गुरुवर उपाध्याय अणगारो से।।

श्रावक श्राविका, त्यागी तपस्वी, सम्यग् दृष्टि गुणी महान्।
मन वच काया क्षमा मागते, सब जीवो से होय जहान।।"

"सब जीवो के साथ पूर्व में, जब भी आए बुरे विचार।
अथवा जान बूझकर मैं नित, करता रहा बुरा व्यवहार।।

भूले हुई अनेकों मुझसे, मन वच काया के आधार।
क्षमा–पर्व पर क्षमा मागता, आया हाथ पसारे द्वार।।

क्षमा करूॅ मै सब जीवो को, क्षमा करे सब जीव मुझे।
मेरे मित्र सभी प्राणी है, नही किसी से बैर मुझे।।"

अत मे यहाँ क्षमा धर्म का विशिष्ट महत्व दर्शाने वाले कुछ दोहे त है[1]–

(१)

क्षमा भाव जागै जदी रूँ रूँ उमडे प्रेम।
क्रोध मान माया मिटे, बरसे हरदम खेम।।

(२)

क्षमा भावनी विवसता नी कायरता चित्त।
जीव मात्र सू मित्रता, वीर भावना चित्त।।

(३)

क्षमा वीर मे बल घणो, काटे मन री गॉठ।
बलबलती लुवा सहै, हिये न राखे आट।।

(४)

काकड मे बोवै कमल, ज्वाला मे बरसात।
लोहा ने पिघलाय दे, ठूठ उगावे पात।।

(५)

क्षमा वीर रे हाथ मे, दीसै नही तलवार।
दुसमण ने मारे गजब, मानै वो आभार।।

(६)

क्षमा सहण री शक्ति है, नही दहण रो काम।
क्षमा भाव जागे जठै, दोडया आवे राम।।

(७)

क्षमा बुहारे आत्मा, निरमल दरपण होय।
आप तणो आपो मिटे, सब जग आतम जोय।।



डॉ० नरेन्द्र भानावत विरचित।

८. दान

पात्रे दान सत्सगा फले मनुष्य जन्मन ।[1] अर्थात मनुष्य जन्म के दो फल है– (१) पात्र दान व (२) सत्सग। भारत धर्म प्रधान देश है और भारतीय सस्कृति दान एवं त्याग प्रधान है। सभी धर्मों मे भी दान को महत्त्व दिया गया है। धर्म के चार अगो व मोक्ष के भव्य द्वार दान, शील, तप व भावना मे दान का प्रथम स्थान है। कलियुग मे दान धर्म सर्वोत्तम बताया गया है। वैदिक सस्कृति मे कहा है– सतयुग मे तप, त्रेता मे ज्ञान, द्वापर में यज्ञ {लोक हितकारी सत्कर्म} व कलियुग मे दान ही श्रेष्ठ धर्म है ।[2] इसीलिए सद्गृहस्थो के द्वार दान हेतु सदा खुले रहते है। शास्त्रो मे भी ऐसे उल्लेख मिलते है। तुगिया नगरी के धर्मनिष्ठ श्रमणोपासको के गृह द्वार दान हेतु सदा खुले रहते थे। सभी तीर्थकर गृहस्थवास के त्याग से पूर्व उत्तम बरसी दान देकर दान धर्म की गरिमा व महिमा की अभिवृद्धि करते है। वे बरसी दान में एक करोड आठ लाख स्वर्ण मुद्राये नित्य एक वर्ष तक देते है। दान धर्म की मोक्ष के लिए अनिवार्यता की उद्घोषणा करते हुए प्रभु ने फरमाया है 'असविभागी नाहु तस्स मोक्खो ।[3]

वैष्णव धर्म मे भी बिना दान दिए खाने वाले को विषभोगी बताया है– अदत्वा विषमश्नुते ।[4] 'बौद्ध धर्म मे भी कहा है–कृपण (दान न देने वाला)

---

१ सूक्त रत्नावलि
२ मनुस्मृति
३ दर्शवैकालिक अ० ६
४ विष्णु पुराण ३/११/७२

नुष्य कभी स्वर्ग मे नही जाता।[1]

दान का अर्थ–दान शब्द 'द' धातु से बना है, जिसका सामान्य र्थ देना है। कहा भी है–'दातव्यामिति दान' अर्थात् जो दिया जाता है, ह दान है। इस सदर्भ मे एक पौराणिक आख्यान उल्लेखनीय है । एक र ब्रह्माजी के पास देवगण पहुँच कर बोले–'प्रभो कुछ दो।' ब्रह्माजी कहा–'द' अर्थात तुम विलासी हो, अत दमन करना सीखो इसके बाद ब राक्षसगण को पता लगा तो वे भी पहुचे। ब्रह्माजी ने उन्हे भी याचना रने पर –'द' का प्रसाद दिया। उन्हे स्पष्ट कहा कि तुम उद्दण्ड हो, त दया सीखो। तदनन्तर मनुष्य भी ब्रह्माजी के पास पहुचे। ब्रह्माजी मनुष्यो को भी 'द' की प्रसाद दी। उन्होने स्पष्ट करते हुए कहा– तुम परिग्रही हो, अत. दान देना सीखो। इसका साराश यह है कि मानव लिए दान का बडा महत्व है। आचार्य विनोबा के शब्दो मे जो देता वह देवता है और जो रखता है, वह राक्षस है।

न की व्याख्या–

(१) अनुग्रहार्थ स्वस्यति सर्गोदानम्।[2] अर्थात् अनुग्रह के लिए नी वस्तु का त्याग कर देना दान है। अनुग्रह अर्थ यहा अहसान नही, कार है।

(२) 'स्वपरोपकारार्थ वितरण दान।[3] अर्थात् स्व एव पर के उपकार लिए वितरण करना दान है।

(३) किसी वस्तु से अपनी सत्ता या ममता उठा लेना ही दान । इसे त्याग भी कहते है। किन्तु दान और त्याग मे थोडा अन्तर होता । मुख्यत दान पुण्य का व त्याग निर्जरा का हेतू होता है । दान मे त्त, वित्त व पित्त तीनो की आवश्यकता होती है, जबकि त्याग मात्र

धम्म पद १३/११ · २ तत्वार्थ सूत्र ७/३३

जैन सिद्धान्त दीपिका ६/१७

चित्त से किया जा सकता है। दान प्राप्त वस्तुओ का और वह भी सीमित मात्रा मे किया जा सकता है, जबकि त्याग अप्राप्त वस्तुओ का और अति विशाल मात्रा में तीनों लोक का भी हो सकता है। दान मे दी गई मात्रा का ध्यान होता है जबकि त्याग मे बिना त्यागी की मात्रा को देखा जाता है। त्याग युक्त ज्ञान उत्तम होता है।

दान के भेद, विविध दृष्टि से :

दो भेद–(१) **मूलक दान** (लौकिक दान)–जो भव चक्र में उलझाए रखे।

(२) **विवट्ट मूलक** (लोकोत्तर) दान– जो भव चक्र से बाहर निकाले, वह विवट्ट मूलक दान है । यह भी दो प्रकार का होता है–

(अ) **अभय दान**– इससे अनेक जीवों ने भवान्त किया है। जैसे राजा मेघरथ ने कबूतर की रक्षा, स्वयं का मास देकर की तो भ० शान्तिनाथ हुए।

(ब) **सुपात्र दान**–इसके भी तीन भेद है–

(क) **जघन्य सुपात्र दान**– अविरति सम्यग् दृष्टि को दान दिया जावे।

(ख) **मध्यम सुपात्र दान**–देश विरति श्रावक को दान दिया जावे।

(ग) **उत्तम सुपात्र दान**– सर्व विरति साधु को दान दिया जावे।

साधुओं को दान में चौदह प्रकार की निवद्य वस्तुये दी जाती हैं यथा– (१) अशन (अन्न दूध आदि) (२) पान (पानी) (३) खादिम (खाद्य–मेवे फल,औषध आदि) (४) स्वादिम (सुपारी आदि) (५) वस्त्र (६) पात्र (७) कंबल (८) रजोहरण (९) पीठ (चौकी) (१०) फलग (पाटा), (११) शैय्या (१२) संस्तारक (तृण आदि का आसन) (१३) औषध व (१४) भेषज (अनेक दवाओं के सयोग से बनी गोलियां आदि)।

सुपात्र दान से भी संसार परित्त होने के अनेक उदाहरण है। संगम ग्वालिये खीर देकर शालि भद्र सेठ बने थे । शंखा राजा दाखो

का धोवन देकर भ० नेमीनाथ बने थे। भ० महावीर ने नयसार के भव मे साधु को दान देकर समकित स्पर्श की थी।

तीन भेद– (१) सात्विक– जो दान कर्त्तव्य समझ कर मात्र दान के भाव से देशकाल तथा पात्र का विचार कर बिना बदले के भाव से दिया जाता है तथा जिसमे चित्त (दाता), वित्त (वस्तु) व पित्त (पात्र लेने वाला) तीनो उत्तम होते है।

(२) राजस– जो क्लेश पूर्वक बदले के भाव से फल की इच्छा से दिया जाता है। इस पर एक उदाहरण प्रस्तुत है । एक बार एक सेठजी ने म० गाधी से शिकायत की, कि बापू ! दुनिया कितनी बेईमान है। मैने एक लाख रुपये लगा धर्मशाला बनवाई । अब धर्मशाला बन जाने पर मुझे ही उसकी प्रबन्ध समिति से अलग कर दिया गया है। जब तक वह बनी न थी, मेरे को पूछा जाता था। अब बन जाने पर पचास पच अधिकार जमाने वाले हो गए है। यह सुन बापू कुछ देर सोचकर बोले–'आपको यह शिकायत इसलिए हो रही है कि आपने दान का सही अर्थ नही समझा। किसी को कुछ देकर पाने की इच्छा वास्तविक दान नही है । वह तो व्यापार हुआ। व्यापार मे लाभ–हानि दोनो होते है। यह सुनकर सेठजी निरूत्तर हो गए। वास्तव मे बदले की भावना से दान ही नही भक्ति भी व्यापार बन जाती है। कहा है–

इबादत करते है जो लोग, जन्नत की तमन्ना में।
इबादत है नही वह तो, एक तरह से तिजारत है।।

(३) तामस– जो बिना सत्कार–सम्मान के अवज्ञा पूर्वक बिना देश–काल का विचार किए कुपात्रो या अपात्रो को किया जाता है । जो विकृत श्रद्धा वाले होते है वे कुपात्र है। जैसे हिंसा मे धर्म मानने वाले आदि। सत्यार्थ से विपरीत श्रद्धा वाले है, एकान्त मिथ्या दृष्टि है वे अपात्र है। जैसे जीव को अजीव मानने वाले या अधर्म को धर्म मानने वाले आदि।

दान के चार भेद—वस्तु अपेक्षा से दान के चार भेद भी होते है– (१) आहार (२) औषध (३) अभय व (४) ज्ञान दान।

दूसरी प्रकार के चार भेद—आचार्य जिनसेन ने 'महापुराण' में दान के चार भेद इस प्रकार बताए है–

(१) **दया दत्ति**– दया से देना या अभय देना।

(२) **पात्र दत्ति**– पात्र हेतू योग्य आहार आदि देना।

(३) **सम दत्ति**– अपने समान गृहस्थी को देना।

(४) **अन्वय दत्ति या सकल दत्ति**– अपने परिवार या जाति वालो को देना।

दान के पॉच भेद– (१)अभय दान (२) सुपात्र दान (३) अनुकम्पा दान (४) उचित दान (५) कीर्ति दान।

दान के दस भेद[1]– (१) अनुकम्पा (२) संग्रह (३) भय (४) कारुण्य (५) लज्जा (६) गौरव (७) अधर्म (८) धर्म (९) करिष्यति (बदले में उपकार भावना से) व (१०) कृत दान। इनका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है :–

(१) अनुकम्पा दान– दया से देना। दु:खी प्राणियो के प्रति सहानुभूति व आत्मीयता की संवेदना से दिया जाता है। यह दान हृदय की मृदुता और सम्यक्त्व की योग्यता का लक्षण है।

(२) संग्रह दान—संग्रह हेतू या लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए, जन समूह को कुछ सहायता दे अपने पक्ष में कर लेना या अपनी प्रसिद्धि हेतु संबंधितों को दान देना। इस दान के पीछे स्वार्थ सिद्धि व सांसारिक आकॉक्षाओं की भावना रहती है जिससे यह मोक्ष एवं कर्म क्षय का कारण नहीं होता।

(३) भयदान—भय या दबाव से देना। यह न मुक्ति का हेतु है

---

१. ठाणाग १० उ ३ सू ७४५।

और न पुण्य का।

(४) **कारुण्य दान**–करुणा से देना। किसी मृतक की आत्मा सुखी हो, इस हेतु उसके लिए दान देना भी इसी मे आता है (देखे स्थानाग सूत्र स्था ६ टीका)

(५) **लज्जा दान**– लज्जा से देवे।

(६) **गौरवदान**– प्रतिष्ठा समझ,गर्वपूर्वक,यशकीर्ति वश देवे।

(७) **अधर्म दान**– हिसा, अनर्थ ,आदि का कारण हो जैसे बलि के लिए बकरा देना, यज्ञादि हिसक प्रवृत्तियो मे देना।

(८) **धर्म दान**– जो अहिसा, सत्य, प्राणीहित आदि धर्म भावना से देवे।

(६) **करिष्यति दान**–जो प्रतिदान की आशा से देवे। यह स्वार्थ और कर्त्तव्य बुद्धि से दिया जाता है।

(१०) **कृतदान**–जो प्रत्युपकार की भावना से देवे। यह कृतज्ञता प्रगट करने व कृत उपकार से उत्रृण होने के भाव से दिया जाता है।

उपरोक्त दस प्रकार के दानो मे धर्मदान सर्वश्रेष्ठ हैं इसके पश्चात अनुकम्पा कृत, करिष्यति, सग्रह, गौरव, भय, लज्जा, कारुण्य और अधर्म से नवदान उत्तरोत्तर निकृष्ट है।

दाता के तीन भेद :[१]

(१) उत्तम दाता– जरूरत वाले के पास जाकर दान देना।

(२) मध्यम दाता– बुलाकर देने वाला।

---

१ पाराशर स्मृति ४/२३६

(३) निकृष्ट दाता–सेवा कराकर या अपमान कर देने वाला।

दाता के चार प्रकार :

(१) कंजूस– जो दान देने में बडा कृपण होता है। 'चमडी चली जावे पर दमडी न जाए' यह उसका मुख्य सिद्धान्त होता है। वह दूसरे को दान देता देखकर भी खेदित होता है। एक बार एक कंजूस पति को उदास देखकर उसकी पत्नी ने पूछा–

कहा गांठ से गिर गयों, कहा कुछ किसको दीन।
पत्नी पूछे सूम से, क्यों पिया बदन मलीन।।

इस पर कंजूस पति ने उत्तर दिया–

ना कुछ गाठ से गिर गयो, ना कुछ किसको दीन।
देता देखिया और ने, ताते बदन मलीन।।

कंजूस देने विषयक उपदेश सुनना भी पसन्द नही करता । एक अन्य प्रसग है– एक कजूस सेठ को उसके मित्र ने फोन पर कहा–मेरे पिताजी सख्त बीमार है। डाक्टर ने एक हजार रुपये का खर्चा बताया है। आप एक हजार रुपये उधार रूप मे भिजवा देवे। कजूस ने कहा–मित्र, तुम्हारी बात समझ मे नही आ रही है। मित्र ने पुन जोर से कहा तो वह बोला –समझ मे नही आ रही है, मित्र ने पूरा जोर लगा कर फिर कहा तो सेठ ने फिर वही उत्तर दिया। तभी टेलीफोन आपरेटर जो दोनो की वार्ता सुन रहा था ने सेठ साहब से कहा आपका मित्र एक हजार रुपये भिजवाने के लिए कह रहा है। सेठ ने उत्तर दिया–भाई, मेरे समझ मे तो बात आई नही । तुम्हारी समझ मे आ गई हो तो तुम्ही रुपये क्यो नहीं भिजवा देते ? बस दान देने की बात भी ऐसे ही, कंजूस की समझ मे नही आती।

इस सन्दर्भ मे मुम्मण सेठ का उदाहरण भी प्रसिद्ध है। उसके पास अपार धन था। करोडपति होकर भी वह अर्ध रात्रि मे मूसलाधार वर्षा

मे भी उफनती नदी से, बहती लकडिया बटोरेने जाने से नही चूकता था। किस लिए ? करोडो सोनैया की कीमत का रत्न जडित दूसरा बैल तैयार करने हेतु। एक बैल तो उसके पास मौजूद था। उसकी तृष्णा अपार थी, जिससे उसे अन्त मे मर कर सातवी नरक मे जाना पडा। उसके लिए कहा गया है–

मुम्मण सेठ धन सचियो, सौनैया छप्पन करोड।
नही खायो नही खरचियो, मुओ माथो फोड।।

कजूस की सूझबूझ भी निराली होती है। एक बार एक कंजूस की पत्नी बीमार पडी। वह मृत्यु की शैय्या पर थी। तभी बिजली फेल हो गई। कजूस मोमबत्ती जलाकर, बिजलीघर बिजली चालू कराने हेतू जाने लगा। वह जाते–जाते पत्नी को बोल गया कि मै बिजलीघर जा रहा हूँ मेरी अनुपस्थिति मे तुम्हे लगे कि प्राण पखेरू उडनें वाले है तो मोमबत्ती को बुझा देना।

कंजूस के भाव, दान विषयक कैसे होते हैं । एक कवि की भाषा मे पढिये–

"जल डूबू अग्निजलू , अहि मुख अगुलीद्यू।
इतना मै कारज करू, दददो नाम न ल्यू।।"

(२) मक्खीचूस–ये कजूस से भी अधिक निकृष्ट होते है। घृत मे मक्खी गिर जाय, तो उससे भी घी निकलवा लेते है। ये शरीर के मैल से तैल निकालने वाले होते है । कहा है–

"दानी ज्ञानी समझते, दान हाथ का मैल ।
मक्खीचूस तो मैल से, निचो निकाले तैल।।"

एक बार राजा भोज को वन विहार करते एक मक्खीचूस मिला। वह पशुओं को डण्डे मार मार कर उनका गोबर निकलवाता और फिर

गोबर मे से अनाज के दाने बीनकर धोकर इकट्ठे करता और खा जाता राजा भोज को उसे देखकर बडी दया आई। उनके मुख से निकल गया–

'जननी ऐसा ना जने, भौंय पडें कण खाय।'

जब मक्खीचूस ने यह सुना तो उससे नहीं रहा गया। वह विद्वान् और कवि था अत उसने तत्काल राजा के उक्त पद को जोडते हुए कहा–

'छता जोग दुख ना हरे, ऐसा न जणियो मोरी माय।'

राजा भोज गुणग्राही था । अत. वह बडा प्रभावित हुआ और उस मक्खीचूस को न केवल पुरस्कृत किया वरन् दीन–दुखियो के लिए तब से खजाने खोल दिए।

(३) **दातार**– जो दान देने मे आनन्द मानता है और दान के प्रसंगों में कभी पीछे नहीं हटता है। कहा है–

'दातारो को आनन्द आता, देने और दिलाने में।
कजूसों को आनन्द आता, जोड–जोड मर जाने में।।'

दातार दूसरो को दान देने हेतु स्वयं दु ख पा लेता है। वह स्वयं भूखा और अभाव ग्रस्त रह कर भी दूसरो को भोजन आदि देता है और दान दे दुखियो के दु:ख दूर करता है। इस सदर्भ मे महाकवि माघ व उनकी पत्नी का दृष्टान्त उल्लेखनीय है। वे सामान्य गृहस्थी थे, एक बार एक निर्धन ब्राह्मण ने अपनी कन्या की शादी करने हेतु इनसे धन की याचना की । इनके पास कुछ नही था। आखिर सोती हुई पत्नी के धीरे से एक हाथ का कंगन निकाल कर देना चाहा। तभी पत्नी जाग गई। उसने कारण पूछा और सुनकर बोली–गरीब ब्राह्मण की बच्ची की शादी एक कगन से कैसे होगी ? यह सुन कर उसने दोनो कंगन सहर्ष दे दिए।

दूसरा उदाहरण– पूणिया श्रावक व उनकी पत्नी का है । साधर्मी को नित्य भोजन कराने हेतु घर में सामग्री का अभाव होने

एकान्तर तप किया करते थे इनकी प्रशंसा स्वय महावीर ने की थी।

(४) **उदार**—जो समृद्ध सम्पन्न होकर भी धन का गुलाम नही होता, धन उसका गुलाम होता है। वह धन का सदुपयोग स्व–पर दोनो के लिए करता है। स्वय भी यथोचित उपयोग करता है और दूसरो को भी देकर उनके दु ख दूर करता है। ऐसे उदार दाताओ के लिए बौद्ध धर्म मे कहा है—दुल्लहा लोगम्मि, तित्रोय तपेत्ता च' अर्थात् जो स्वय तृप्त हो वह दूसरो को भी तृप्त करे, ऐसे सद्पुरुप लोक मे दुर्लभ हैं।

राजा भोज का दृष्टान्त इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है । वह बडा विद्वान तथा उदार दानी था। उसने दान देकर खजाने खाली कर दिये थे। तब मत्री बडा चिन्तित हुआ। उसने समझाने हेतु उनके आसन के पास दीवार पर लिख दिया 'आपदर्थे धन रक्षेत्।' राजा ने मत्री के आशय को समझ, आगे लिख दिया 'भाग्यवंत कुत आपदा ।' मंत्री ने पुन लिख दिया –'कदाचित् कुप्यते दैव । राजा ने पुन लिख दिया'–सचितोऽपि विनश्यति।' अब मत्री आगे क्या लिखता ? इससे सुस्पष्ट है कि धन को दान न देकर संचित करना उचित नहीं है।

उदारता की नीति होती है–

जो जल बाढे नाव मे, घर मे बाढे दाम।
दोनो हाथ उलीचिए, यही सयानो काम।।

शास्त्रकार भी कहते है–

"द्विहस्त समाहार सहस्त्र हस्त सकिर ।"[१]
अर्थात् दो हाथो से कमाओ और हजार हाथो से दान दो।

उत्तम दान के तीन प्रकार :

१–ऋग्वेद ३।२४।५

(१) **अभयदान**– "दाणाण सेट्ठ अभय पयाण"[१] के अनुसार स दानो मे अभयदान (जीवो की रक्षा करना उन्हे अभय बनाना) सर्व श्रेष्ठ दान है। राजा मेघरथ ने एक कबूतर की प्राण रक्षा कर तीर्थंकर गोत्र क उपार्जन किया था व भ० शान्तिनाथ बने थे। अभयदान की प्रवृत्ति समाज में अधिकाधिक हो, इस हेतु जीव दया मडल स्थान–स्थान पर प्रस्थापित किए जाने चाहिए, जिनका मुख्य उद्देश्य अनाथ, अपंग, दीन, दु.खी, बीमार सकट ग्रस्त, मरते हुए प्राणियो की रक्षार्थ उनकी अन्न, वस्त्र, दवा आदि से निर्धन विद्यार्थियो की सहायता छात्र–वृति एव पुस्तके आदि देकर तथा पशु–पक्षियो के लिए चारे, दाने–पानी की व्यवस्था करके, रक्षा करने का होना चाहिए । वस्तुत· जीव दया और अभय दान से बढ कर ससार मे अन्य कोई उत्तम कर्म नही है। कवि कहता है–

"कुरान बाइबिल सब पढे, चारो वेद पुरान।
जीव दया जानी नही, तो सब फोकट ज्ञान।।"

म० कबीर ने भी कहा है–

"कबीर वे ही पीर है, जो जाने पर पीर।
जे पर पीर न जानहि, वे काफिर बेपीर ।।"

वस्तुत वही दाता श्रेष्ठ है जो अभय दान देता है । नीति में कहा –

"इन्द्रियाणां जयेत शूरा. धर्मे चरति स पडित ।
सत्यवादी वदेत् वक्ता, दाता भूताभयप्रद·।।"

अर्थात् इन्द्रिय जेता शूर, धर्म सेवनकर्त्ता पडित, सत्यवादी वक्ता और जीवो को अभय देने वाला सच्चा दाता है सिद्धान्तकारों ने ज्ञान दान से भी अभय दान को श्रेष्ठ कहा है।

१–सूत्र कृताग,वीर स्तुति। अ ६गा २३

अत अभय दान की महिमा व गरिमा समझ इसे अवश्य अपनाना चाहिए।

(२) **ज्ञान दानः**— आत्म हित की दृष्टि से विचार किया जाय तो ज्ञानदान के समक्ष अन्य सभी दान फीके है। कारण अन्य दानो का फल पुण्य है, जबकि ज्ञानदान का फल मोक्ष है। अन्य दान संसार वर्धक भी हो सकते है, किन्तु ज्ञानदान संसार परित्त कराने वाला है। शास्त्र मे कहा है कि माता–पिता के महा उपकार का बदला उनकी जीवन पर्यन्त सेवा करके, अपनी चमडी के जूते बना उन्हे पहिना कर भी नही चुकाया जा सकता। किन्तु उन्हे ज्ञानदान देकर, प्रतिबोधित कर दिया जाये, तो उनसे उत्रऋण हुआ जा सकता है। अन्य दान देने पर खूट जाते है, पर ज्ञानदान जितना दिया जाय, उतना बढता है कहा है –

सरस्वती के भण्डार में, बडी अपूरब बात।
ज्यो खर्चे त्यो–त्यो बढे, बिन खर्चे घटी जात।।

ज्ञानदान पाकर बडे–बडे पापी डाकू भी क्षण भर मे धर्मी और महात्मा हो जाते हैं। अत ज्ञानदान का महत्त्व समझ, ज्ञानदान प्रवृत्ति अपनाना श्रेयस्कर है ।

(३) **गुप्त दान** :— दान को गुप्त रूप से देने पर उसका फल बहुत अधिक बढ जाता है । 'बाइबिल' मे कहा है–ऐसा दान दो कि दूसरे हाथ को भी ज्ञात न होवे। वैष्णव धर्म मे कहा है–अहकार से तप और इधर–उधर कहने से दान फलहीन हो जाते है [१] इसी अपेक्षा से कहा गया है–'नेकी कर कुँए मे डाल।' महात्मा तुलसी ने भी दान आदि पुण्य कार्यो को गुप्त रखने हेतु कहा है–

पुण्य प्रगट न कीजिए, करिए पाप प्रकाश,।
प्रगट करे दोऊ घटे, वर्णत तुलसीदास।।

---

१ मनुस्मृति ४/२३६

गुप्तदान के प्रसग मे कविवर रहीम जो अकबर के नवरत्नो में थे, का संदर्भ उल्लेखनीय है। उन्हे जो कुछ सम्राट अकबर देता, वे घर आकर गरीबो मे आंख बन्द कर लुटा दिया करते थे। एक बार चुगलखोर ने जब बादशाह से शिकायत कि रहीमखान तो आपके दिये हुए को, बिना देखे लुटा देते है, तो बादशाह स्वयं उनके निवास पर गरीब के भेष मे पहुँचे। रहीमखान ने उन्हे भी बिना देखे जो कुछ उनके पास था, दे दिया। दूसरे दिन बादशाह ने दरबार मे रहीमखान से पूछा–

"सीखे कहाँ नवाब जो, ऐसी देनी देन।
ज्यों–ज्यो कर ऊँचा करे, त्यो–त्यो नीचे नैन।।"

रहीमखान बडे विचक्षण और आशु कवि थे। उन्होंने बादशाह के भावो को समझ तत्काल उत्तर इस प्रकार दे दिया–

"देनहार कोई और है, देता है दिन रैन।
लोग भरम हम पै करे, तातै नीचे नैन।।"

बादशाह उपयुक्त उत्तर सुनकर बडे प्रसन्न हुए तथा कविवर व समुचित धन दे पुरस्कृत किया।

दान के पॉच आभूषण :–

आनदाश्रुणि रोमाञ्च, बहुमानं प्रिय वच।
कि चानुमोदना पात्रे, दान भूषण पचकम्।।

अर्थात् आनंद के आसू आना, रोमांच होना, बहुमान करना, प्रिय वचन बोलना व सत् पात्र की अनुमोदना करना– ये दान के पांच आभूषण है।

दान के पाच दूषण :–

अनादरो विलम्बश्च, वैमुख्यं विप्रियं वच।
पश्चात्तापं च, पश्चापि, सद्दान दूषयन्त्यमी।।

अर्थात् अनादर करना, विलम्ब से देना, विमुख हो देना, कटु वचन वोलना व देकर पश्चाताप करना ये दान के पॉच दूषण है।

आदर्श दानियो के कुछ उदाहरण :–

(१) पहिले शाह फिर बादशाह– गुजरात के बादशाह मुहम्मद शाह से एक चारण ने कहा– "पहिले शाह फिर बादशाह।" इस पर वह क्रोधित हो उठा। वह बोला– 'नमक हराम, रोटी मेरी खाता है गीत बनिये के गाता है। चारण ने जोर देकर कहा– "मै पूर्ण सत्य कहता हू।' बादशाह ने कहा– इसका प्रमाण देना होगा। चारण वोला– "हुजूर समय आने पर बताऊँगा।"

एक बार भयकर दुष्काल पडा। बादशाह को, चारण से द्वेष रखने वालो ने याद दिलाया कि हुजूर 'शाह' कब काम आयेगे। तब उस चारण व वहॉ के बडे–बडे साहूकारो को बुलाया गया और हुक्म दिया कि दो माह मे, पूरे गुजरात की, बारह माह की अन्न की व्यवस्था करो, वरना सबको फासी की सजा होगी। साहूकारो का शिष्ट मण्डल घूमते–घूमते जब दो माह पूरे होने वाले थे व व्यवस्था की कोई उम्मीद नही थी, एक गॉव मे खेमा सेठ के पास पहुँचा। वह दिखने मे साधारण पर अति समृद्धि का स्वामी था। उसने पिता से पूछा तो पिता ने कहा– अवसर बार–बार नही आता। खेमा ने चदे की सूची मे १२ का अक लिख दिया। सभी चकित रह गये। जब खेमा ने तल घर मे जा, विशाल अन्न के भण्डार बताये तो सबको विश्वास हुआ। राजमहल तक अन्न की गाडियो की कतार बंध गई। तब बादशाह ने माना 'पहिले शाह फिर बादशाह' है। इस प्रकार खेमा ने 'शाह' शब्द की शान रखी।

(२) दानवीर भामाशाह– इन्होने मेवाड भूमि की स्वतंत्रतार्थ महाराणा पताप को इतनी विशाल मात्रा मे धन दिया जिससे बारह वर्ष तक मेवाड की पच्चीस हजार सेना के लिए अन्न की व्यवस्था हो सकी।

परिणामत महाराणा प्रताप, जो तंग आकर सम्राट अकबर के आगे पराजय स्वीकारने वाले थे, पुन स्वतन्त्रता सग्राम के लिए कटिबद्ध हुए और मेवाड की शान रखी।

(३) सर सेठ हुक्मचन्द्रजी– एक बार इनसे किसी ने पूछा–सेठ साहब ? आपकी सम्पत्ति दस करोड है या बीस करोड ? उन्होने उत्तर दिया– २७ ५० लाख। इस पर उन्हे कहा गया केवल शीश महल ही पचास लाख का है, फिर आपकी कई मिले आदि है। क्या आप असत्य नही बोल रहे ? उत्तर मिला–भाई मेरे हाथो से अभी तक इतना ही रुपया परमार्थ में निकला है। जो परमार्थ मे निकला, वही मेरी सम्पत्ति है। मेरी मान्यता है–

"जो खा गया सो खो गया, जो जोड गया ,सो सिर फोड गया।
जों गाड गया सो गवॉ गया, जो दे गया सो ले गया।"

सेठ साहब के उत्तर से प्रश्नकर्ता सतुष्ट हो धन्य–धन्य कह उठा।

अनोखा दान :–एक निर्धन साधर्मी आवश्यकतावश एक श्रीमंत के पास अत्यन्त आर्थिक सकट मे होने से सहायतार्थ पहुॅचा। धनिक ने दान का उत्तम पात्र समझ उसे ५,०००) रुपये देने का कहा तथा अपने लडके के आने तक उसे रुकने को कहा, कारण तिजोरी की चावी लडके के पास थी। किन्तु उस सहायता लेने वाले व्यक्ति को कही जल्दी पहुॅचना था। अत वह दूसरे दिन आकर लेने का कह कर चला गया। दूसरे दिन आकर जब वह सेठ के पास पहुॅचा तो सेठ रुपये लिए उसकी प्रतीक्षा मे बैठे थे। सेठ ने आते ही तत्काल पॉच हजार रुपये नगद दिए और फिर कुछ रुपये अलग देकर बोले यह ब्याज के रुपये भी ले जाओ। वह आदमी बडे असमजस मे पडकर बोला ? किसका ब्याज ? जब सेठ बोले हमारे परिवार की परिपाटी है। हम जिस घडी रुपया देने का वचन देते है, उसी

घडी से वह पैसा उस आदमी का हो जाता है। हम जब तक उसे देते नही हम उसके कर्जदार हो जाते है तथा बाद मे रुपया जितनी देर से देते हैं, उसका उतना ब्याज चुकाना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। वह आदमी सेठ की इस उदार एवं आदर्श नीति के कारण उनके चरणो मे नतमस्तक हो गया और धन्य २ कह उठा। समाज के सेठ साहूकारो के लिए यह उदाहरण मननीय एव अनुकरणीय है।

दान के उत्तम क्षेत्र :–

दान हेतु सात क्षेत्र उत्तम माने गये है[1]– (१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चारित्र (४) साधु (५) साध्वी (६) श्रावक व (७) श्राविका।

दान का फल.

दान मुख्यत पुण्य का हेतु है। किन्तु त्याग एव वीतराग भावना से विसर्जन करना या देना निर्जरा का हेतु है । दान का बडा फल बताया गया है। ब्याज मे दुगुना, व्यापार मे चौगुना, खेत मे शतगुना, पर दान से अनन्तगुना लाभ होता है।

दान का महत्व

(१) दान पृथ्वी का सर्वोत्तम कार्य :

नीति मे कहा है– 'पृथ्व्याम् प्रवर दानम्।'[2] जो दान करते है उन्हे नवरत्न कहा जाता है । दाता को पन्द्रहवॉ रत्न भी नीति मे मे कहा है–

दाता पच दशो रत्न पुत्रस्तु सप्तमो रस ।
नादस्तु पञ्चमो वेदो, जमाता दशमो गह ।।

किन्तु सच्चे दानी विरले होते है। शास्त्रकार कहते है–

---

१ कल्प सूत्र   २ उपदेश तरगिणी।

"शतेषु जायते शूरा, सहस्रेषु च पंडित।
वक्ता दस सहस्रेषु दानी भवेद् वा न भवेद्।।"

अर्थात् सौ मे एक शूरवीर, हजार में एक पडित और दस हजार मे एक वक्ता होता है, किन्तु दानी उनमे भी हो या न हो।

(२) अतिशय पुण्य व धर्म का हेतु :–

दान से न केवल यशकीर्ति व सुख सम्पत्ति की प्राप्ति होती है, वरन् तीर्थंकर गोत्र जैसे पुण्य की उत्कृष्ट प्रकृति का भी अर्जन होता है। कवि के शब्दो में–

पुण्य कमाना हो तो प्यारे दानी बनो।
सुख सम्पत पाना हो तो प्यारे दानी बनो।
धर्म कमाना हो तो प्यारे दानी बनो।।

(३) मोक्ष का प्रथम व भव्य द्वार :

मोक्ष के चार द्वार है–दान, शील, तप, व भावना। इसमे दान प्रथम व मुख्य है । प्रश्न उठता है मोक्ष के चार साधन दान, शील, तप और भाव मे प्रथम स्थान दान को क्यो दिया गया ? इस के पीछे गभीर कारण है जिसे समझना चाहिए। शील तप और भावना की आराधना एव आचरण का लाभ तथा प्रत्यक्ष फल तो मात्र आचरणकर्ता को ही प्राप्त होता है, किन्तु दान का फल व लाभ दाता और ग्रहता दोनो को प्रत्यक्ष मिलता है। दान देने से लेने वाले की आवश्यकताओं और इच्छाओ की पूर्ति होती है। उसके दु:ख का निवारण होता है एव उसके सुख शान्ति मे प्रत्यक्षत अभिवृद्धि होती है, तो दूसरी ओर दाता को सतोप, आनन्द ,सम्मान, औदार्य एव गौरव की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त शील तप और भाव सभी के लिए सुगम और सुलभ नही है । किन्तु दान ही एक सुगम मार्ग है जो सभी के लिए सुलभ है।

अत सर्व साधारण के लिए दान एक ऐसा श्रेष्ठ राजमार्ग है, जिस पर सुगमता से अग्रसर होता हुआ प्राणी अपनी मजिल के निकट सुखे–सुखे पहुँच सकता है।

'कुरान' मे कहा है– इबादत खुदा की तरफ आधे रास्ते तक ले जाती है, रोजा महल के द्वार तक पहुँचा देता है और जकात (दान) से हम अन्दर प्रवेश करते है। इसी दृष्टि से इस्लाम धर्म मे कुल प्राप्त आय से २.५% जकात प्रति वर्ष अनिवार्य देने का विधान है।

(४) दान कभी निष्फल नही जाता :–

दिया हुआ दान कभी निष्फल नही जाता है । कवि कहता है–

ऋतु वसत याचक भया, दिया हरख द्रुम पात।
ताते नव पल्लव भया, दिया व्यर्थ नही जात।।

दान किसी को भी देवे, उसका फल अवश्य मिलता है। इस म्बिन्ध मे निम्न पद उल्लेखनीय है–

"दीन को दीजिए होय दयावन्त, मीत को दीजिए प्रीत बढावे।
सेवक को दीजिए काम करे बहु, सायर को दीजिए आदर पावे।।
शत्रु को दीजिए बैर रहे नही, याचक को दीजिए कीरत गावे।
साधु को दीजिए मुक्ति मिले, पिण हाथ दीधो तो एलो न जावे।।"

वर्तमान मे जो कुछ मिला है, वह पूर्व मे दिए का ही फल है। ना दिए हाथ का रखा भी नही मिलता है। इस बात को कवि ने यमक । श्लेष अलंकार का प्रयोग करते हुए सुन्दर ढग से इस प्रकार कहा –

"दिया दिया सब कहत है, दिया करो सब कोय।
कर का धरा न पावते, जो कर दिया न होय।।"

यहां दिया का अर्थ देना व दीपक दोनों से है।

उपसंहार :

लक्ष्मी विद्युतवत् चंचल एवं अस्थिर है। ज्ञानियो ने धन मांसपिण्ड की उपमा दी है। जैसे मासपिण्ड आकाश मे खेचरों के कार जल मे जलचरों के कारण व स्थल कुत्ते, असुर के कारण सुरक्षित न रहता वैसे ही धन भी सुरक्षित न होने से उसके धारक को कही चैन न मिलता है। अन्तत. धन का वियोग निश्चित होता है। कहा है–

"इस धन की गति तीन है, दान भोग और नाश।
दान भोग मे ना लगे, तो निश्चय होत विनाश।।"

अतएव धन की गति को समझ कर, सद्गृहस्थो को समय रह उसका सदुपयोग दान द्वारा कर लेने मे ही बुद्धिमत्ता है।



६. स्वाध्याय

जिस तरह शरीर की क्षुधा आहार से शान्त होती है, उसी तरह आत्मा की क्षुधा की तृप्ति स्वाध्याय से होती है। अनन्त अनन्त काल से यह आत्मा पराध्याय मे लीन रही है। जिससे उसकी अनादिकालीन तृष्णा से वढी हुई प्यास एक बूद जितनी भी कम नही हुई। यद्यपि इस आत्मा ने ससार के सभी पौद्गलिक सुख अनेक बार अनेक प्रकार से भोगे, पर उससे उसकी तृष्णा घटी नही प्रत्युत् आकाशवत् वढती ही रही। आत्मा मे अनतानुबधी क्रोध, मान, माया लोभ होना उसी अनत तृष्णा का विपाक है। जिस तरह मृग को मरुस्थल मे सूर्य के प्रकाश से दूर क्षितिज पर पानी का समुद्र नजर आता है और वह उसको पाने खूब दौडता है, पर अन्त मे पानी की एक बूद भी न मिलने से वह प्राण गँवा बैठता है, उसी तरह यह आत्मा पराध्याय रूपी सूर्य के प्रकाश मे पौद्गलिक मरुस्थल मे सुख का सागर देखती है, पर उसे सच्चे सुख की एक बूद भी नही मिल पाती और अन्त मे दुर्गति का शिकार होना होता है।

अनत-अनत आत्माएँ जो इस प्रकार मोह व अज्ञान मे पराध्याय मे, भटक रही है उन पर अनंत करुणा लाकर करुणावतार तीर्थंकर देव सच्चे सुख का शाश्वत स्त्रोत वीतराग वाणी को स्वाध्याय हेतु श्रुत रूप में प्रगट करते है। 'स्वाध्याय' अर्थात् स्व का, आत्मा का विज्ञान। इसके मुख्यत दो पक्ष है- (१) सैद्धान्तिक जो पण्डित, विद्वान बनाता है और (२) प्रायोगिक जो साधुत्व प्रगट करता है। स्वाध्याय की सार्थकता विद्वान

होने के साथ–साथ साधक होने मे है, कारण स्वाध्याय आदर्श व यथार्थ को, कथनी व करणी को सुदूर नही समीप देखना चाहता है। स्वाध्याय से इन दोनो में एकरूपता आती है।

अर्थ एवं व्याख्या :

(i) 'स्व अधिआय स्वाध्याय'– अर्थात् निज के सन्मुख होना।

(ii) 'स्व+अध्याय' अर्थात् निज (आत्मा) का अध्ययन। अथवा बिना किसी अन्य की सहायता के स्वयं ही अध्ययन करे।

(iii) 'सुअध्ययनम् स्वाध्याय' अर्थात् सद्साहित्य का श्रेष्ठ प्रकार से अध्ययन करना।

(iv) 'सुआंग अध्ययनम् स्वाध्याय' अर्थात् अंगवाणी का अध्ययन करना।

(v) 'स्वस्थ अध्ययनम् स्वाध्याय' अर्थात् विषय–कषाय से पीडित को स्वस्थ करना।

(vi) 'सु धम्मो स्वाध्याय' अर्थात् श्रुत धर्म स्वाध्याय है।

(vii) 'सुष्ठु आमर्यादया अधीयते इति स्वाध्याय।' 'अर्थात सद्शास्त्रों को मर्यादा सहित पढना स्वाध्याय है।

(viii) ज्ञान भावनालस्य त्याग स्वाध्याय।[1] 'अर्थात् आलस्य त्याग कर ज्ञानाराधना करना स्वाध्याय है।

(ix) 'जं सोच्चा पडिवज्जंति तवं खंति अहिंसयं।' अर्थात् जिसको पढने से अन्तर में तप, क्षमा और अहिंसा की ज्योति जागे वही स्वाध्याय है।

(x) 'स्वस्थ आत्मनः अध्ययनम् स्वाध्यायः' अर्थात् अपनी आत्मा का अध्ययन ही स्वाध्याय है।

(xi) 'स्वाध्याय परम स्तावत् जपः पंच नमस्कृते।[2] अर्थात

---

१ स्थानांग ५/३/४३५ टीका व तत्त्वानुशासन ८०।

२ तत्त्वानुशासन

पंचपरमेष्ठि का जाप एकाग्रता से करना परम स्वाध्याय है।

(xii) 'स्वध्यै स्वाध्याय– यह स्वाध्याय का प्रचीनतम अर्थ है जो आज व्यवहार मे विलुप्त हो चुका है। 'ध्यै' का अर्थ ध्यान है, स्व का, आत्मा का ध्यान स्वाध्याय है।

उपर्युक्त व्याख्याओ का सार यह है कि स्व के लिये स्व से चितन, अध्ययन करना ही स्वाध्याय है।

स्वाध्याय का एक भेद वाचन है परन्तु मात्र वाचन ही स्वाध्याय नही है। वाचन को पाचन कर लेना, आत्मसात कर लेना यथार्थत स्वाध्याय है। आत्मा व शरीर आदि विविध विषयो पर विशाल अध्ययन लेखन कर पी एच डी (डाक्टरेट) की उपाधि लेने वाले हजारो मिल जावेगे, किन्तु उस अध्ययन को आत्मसात कर आत्माभिमुख होने वाले बहुत ही कम मिलेगे। अध्ययन कर टेप की तरह उसे उगलना तो आज हर कोई सीख जाता है, पर उसे निगल कर पचाने की कला को जीवन मे प्रयोग कर, आत्मा को विकसित करने वाले तो और भी कम मिल पाते है।

स्वाध्याय के भेदः

स्वाध्याय के मुख्य पाच भेद है जिन्हे अपेक्षा से स्वाध्याय के अग भी कह सकते है। ये इस प्रकार है[१] –

(१) वाचना– अध्ययन करना, पढना। इसके चार भेद इस प्रकार है[२] –

(i) नन्दा– अन्य दर्शनो को पूर्व पक्ष ले जैन दर्शन को (स्व दर्शन को) सिद्धान्त रूप मे उपस्थित करना।

(ii) भद्रा– युक्तिपूर्वक समाधान कर पूर्वापर विरोध हटा समस्त पदार्थों की व्याख्या करना।

---

१ तत्त्वार्थ सूत्र ९/२५

२ धवला ९ ४, १–५४

(iii) जया– पूर्वापर विरोध परिहार बिना सिद्धस्त अर्थों का कथन करना।

(iv) सौम्या– कही स्खलन–पूर्ण वृत्ति (थोडा–थोडा भाग छूते हुए) की जाने वाली वाचना।

(२) पृच्छना– पठित विषय पर प्रश्न, चर्चा, जिज्ञासा आदि करना।

(३) पर्यटना– पठित विषय की पुनरावृत्ति करना।

(४) अनुप्रेक्षा– पठित विषय पर चितन–मनन करना।

(५) धर्मकथा– विषय को भली भॉति समझने व समझाने हेतु तत्संबधी कथानक पढना–पढाना।

उत्तम स्वाध्यायः

जो स्वाध्याय उपर्युक्त पॉचो भेदों से युक्त हो, जिसमे चित (सुनाने वाला) वित्त (शास्त्र, ग्रथ या विषय) तथा पित्त (सुनने वाले श्रोता) तीनो उत्तम हो तथा जो तीनों योगों की एकाग्रता से होवे वह स्वाध्याय उत्तम है। उत्तम वाचक वे होते है, जो शास्त्रो के मर्मज्ञ व मुनि होते हैं शा जो सर्वज्ञ वीतराग अरिहत द्वारा कथित है, और उत्तम श्रोता वे है जो निकट भी भव्य, सम्यग्दृष्टि और हलु कर्मी साधु या श्रावक की भूमिका पर है। उत्तम स्वाध्याय हेतु द्रव्य एवं भाव के साथ–साथ क्षेत्र एव काल की अनुकूलता भी अपेक्षित है। निरवद्य, एकान्त व शात वातावरण हो– ऐसा क्षेत्र अनुकूल होता है। प्राचीन काल में श्रावक अपने निवास के मकान में, एक कक्ष अलग से साधनार्थ बनाते थे। नसिया का जंगल मे निर्माण भी इसी हेतु होता था। नसिया नैषेधिकी–णिसीहिया (जहॉ आगमन निषिद्ध हो) शब्द से बना है। क्षेत्र की तरह काल की अनुकूलता भी आवश्यक है 'काले काले समाचरे' के अनुसार जो काल स्वाध्याय के लिए उपयुक्त है, उस में स्वाध्याय करना चाहिये। शास्त्रो के स्वाध्याय मे काल की असज्झायों को टालने पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

स्वाध्याय के उद्देश्य :

शास्त्रो का स्वाध्याय मुख्यत पॉच कारणो से अपेक्षित है। आगमकार कहते है[1] – "णाणट्ठयाए, दसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए उग्गविमोयपट्ठाए, अहत्थेवा, भावे जापिस्सामीति कट्टू।।" अर्थात् ज्ञान वृद्धि हेतु चारित्र शुद्धि हेतु व विग्रह मिटाने और पदार्थों का यथार्थ ज्ञान करने के लिए शास्त्र स्वाध्याय अपेक्षित है।

स्वाध्याय–क्रम :

सामान्यत प्रथम प्रथमानुयोग, फिर करणानुयोग, अनतर चरणानुयोग और अन्त मे द्रव्यानुयोग पढने चाहिये। अन्यथा अक्रम से पढने पर 'बन्दर के हाथ उस्तरा' वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है।

स्वाध्याय की आवश्यकता :

आत्मा के लिए स्वाध्याय परम आवश्यक और अनिवार्य है। साधु के लिए तो प्रतिदिन अष्ठ प्रहर मे दो प्रहर स्वाध्याय करने का विधान है।[2] श्रावक के लिए भी स्वाध्याय कर्त्तव्य है। श्रावक के षट् कर्म मे स्वाध्याय भी एक है।

षट्कर्म है –

"देवार्चा [1] गुरू[2] पास्थि स्वाध्याय[3] सयम[4] स्तप[5] ।
ध्यान[6] चेति गृहस्थाणाम् षट् कर्माणि दिनेदिने।।"

किन्तु आधुनिक श्रावक के तो षट्कर्म निम्न प्रकार हो गये है–

"धूमपान[1] चायपूजा[2] बूटपालिश[3] चितरजन[4]।
नशा सेवन[5] ताशखेलण[6] षट्कर्माणि दिने–दिने।।"

---

१ स्थानाग सूत्र ५/६८

२ उत्तरा अ २६ गा १२ व १८।

जैनेतर ग्रन्थ श्रुतियो मे भी स्वाध्याय की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा है– 'तदहर ब्राह्मणो भवति, यदह स्वाध्याय नाधीते।' अर्थात् जिस दिन स्वाध्याय नहीं करते ब्राह्मण अब्राह्मण हो जाते हैं। इसी तरह ऋषि कथन है– सत्यं वद् धर्मचर, स्वाध्यायान्माप्रमदः[1]

'वर कर्दम मेकत्व, मल कीटता वरम्।
वरमन्ध गुहाऽहित्व, न नरस्याऽविचारिता।।'[2]

अर्थात् कीचड में मेढक होना अच्छा है, विष्ठा का कीट बनना अच्छा है, अधेरी गुफा में सर्प होना अच्छा है पर अविचारी मनुष्य होना अच्छा नही।

उत्तम स्वाध्यायी बनने के उपाय :

(१) विद्वान त्यागियो के प्रवचन ध्यान से सुने। इससे बहुत लाभ होता है। श्रवण के लाभ इस प्रकार कहे है–

'सवणे नाणे य विन्नाणे, पच्चक्खाणे सजमे।
अनासवे तवे चेवे बोदाणे अकिरिया सिद्धि।।'[3]

(२) पठन–पाठन तन्मयता से नियमित हो, तथा तदनुरूप जीवन को ढालने का प्रयास होवे।

(३) ज्ञानियों से विषय समझने व शका निवारणार्थ चर्चा करे

(४) उत्तम ग्रन्थो–शास्त्रो को पुन–पुन पढे। श्रेष्ठ पुस्तके जीवन देव प्रतिमाएँ है जिनकी आराधना से तत्काल व्यक्ति लाभान्वित होता है

(५) जीवन विकास हेतु स्वर्ण सूत्रो का चयन करे।

(६) ज्ञान का नि सकोच आदान–प्रदान करे।

(७) जगत, जीवन, मानव स्वभाव, समाज संस्कार व देशकाल पर तथा कर्मो के विपाक पर चिन्तन–मनन करे।

---

१ तैतिरीयोपनिषद १/११/१
२ योग मुमुक्ष प्रकरणम् ३ भगवती सूत्र २/५

(८) आत्म–निरीक्षण करते नित्य स्व की योग्यता का अकन करते रहे।

(९) 'खोजी जीवे व वादी मरे' जैसी प्रवृत्ति रखे व ज्ञान गर्वित न हो।

(१०) सदा समन्वय–सतुलन पर दृष्टि रखे'

(११) पर निन्दा व आत्म प्रशसा से बचे।

(१२) धर्म, सम्प्रदाय, जाति, भाषा व प्रान्त के झगडो मे नही उलझे।

(१३) पढे–सुने का सार अपनी स्मृति व उपयोग के लिये उसके नोट्स लिखे। नोट्स के लिये एक स्वय की डायरी अलग से रखे।

(१४) ज्ञानवृद्धि का गुर है 'घोचिपूलि'। अर्थात घो=घोटना, चि=चितवन, पू=पूछना व लि=लिखना। इन चार प्रक्रियाओ को अपनाते रहे।

(१५) स्वाध्याय पवित्र, शुद्ध व शान्त वातावरण से सपन्न धर्मस्थल मे किया जावे।

स्वाध्याय के फल– स्वाध्याय पाच भेद से पचमुखी दीपक समान प्रकाशक है। शास्त्रकार प्रत्येक भेद के फल निम्न प्रकार स्पष्ट करते है –

(१) वाचना – वायणाए ण भते, जीवे कि जणयइ ?
(हे भगवन्! वाचना से जीवो को क्या लाभ होता है ?)
प्रभु ने कहा–"वायणाए निज्जर जणयइ।"
(वाचना से कर्मो की निर्जरा होती है)

(२) पृच्छना– "पडिपुच्छणयाए ण भते कि जणयइ?"
(हे भगवन्! प्रतिपृच्छा करने से जीव को क्या लाभ होता है ?)
प्रभु ने कहा पडिपुच्छणयाएण सुत्तत्थ तदुभयाइ विसोहेइ। कंखा मोहविज्ज कम्म वोछिन्दइ।"
(प्रतिपृच्छा करने से जीव–सूत्र अर्थ और तदुभय को अक्षर मात्रा,

आदि से शुद्ध करता है और कांक्षा मोहनीय कर्म का नाश करता है।)

(३) पर्यटना– "परियट्टणाए ण भते जीवे किं जणयइ?

(हे भगवन ! परिवर्तना से जीव को क्या लाभ होता है?)

प्रभु ने कहा– "परियट्टणाए ण वजणाइ जणयइ वजणलद्धि च उप्पाएइ।" परिवर्तना से व्यंजन लब्धि (स्पष्ट ज्ञान) व उपयोग की निर्मलता होती है)

(४) अनुप्रेक्षा– "अणुप्पेहाएण भते जीवे कि जणयइ ?

(हे भगवन् ! अनुप्रेक्षा से क्या लाभ होता है ?)

प्रभु ने कहा– अणुप्पेहाए आउयवज्जाओ सत्तकम्मप्पगडीओ घणो य बंधण बद्धाओ सिढिल करेई।"

(अनुप्रेक्षा से आयुकर्म छोड शेष सात प्रकृतियो के बधन शिथिल होते है।)

(५) धर्मकथा– "धम्मकहाएण भते कि जणयइ?"

(हे भगवान! धर्म कथा से जीव को क्या लाभ होता है ?)

प्रभु ने कहा– धम्म कहाएण पवयणं पभावेइ . ।"

(धर्मकथा से जीव प्रभावना करता है।)

उपरोक्त प्रकार से स्पष्ट है कि जो फल बडी–बडी तपस्या व ध्यान से प्राप्त होते है वे स्वाध्याय से सहज ही प्राप्त हो जाते है।

स्वाध्याय से लाभ .

(१) मन सरलता से एकाग्र व स्थिर होता है– मन बहुत चचल है। नीति मे दस वस्तुएँ चचल कही है–

"मनो मधुकरो मेघो, मानिनी मदनो मरुत।
मा मदो मर्कटो मत्सो, मकारा दस चचला।"

इन सब मे मन सर्वाधिक चचल माना गया है। उसे जप, तप या किसी अनुष्ठान से नियन्त्रित नही किया जा सकता। किन्तु स्वाध्याय से उसे सरलता से नियन्त्रित कर, धर्म मे स्थिर किया जा सकता है।

(२) विद्वान बन कर सर्वत्र पुजता है– स्वाध्याय से व्यक्ति विद्वान होता है जो सर्वत्र पूजा जाता हे। नीति मे कहा है–

"नृपत्व च विद्वत्व नैव तुल्य कदाचित।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते।।"

इस सदर्भ मे एक कथा है। एक बार एक सेठ व एक विद्वान मे दानो मे कौन बडा हे, इस पर विवाद हो गया, दोना राजा के पास गए। राजा ने दोनो को झगडता देख कैद कर, दूसरे राजा के पास उन्हे फॉसी लगाने के आदेश के साथ भिजवा दिया। सेठ ने घबरा कर विद्वान से बचाने हेतु युक्ति निकालने को कहा। विद्वान ने सेठ से हार कबूल कराई। तदनंतर विद्वान ने दूसरे राजा के पास पहुँचने पर उनकी यशोगाथा कविता मे गाकर कही व अन्त मे यह भी बोला कि जहॉ उन दोनो को फॉसी होगी, उस राज्य मे बारह वर्ष का भयकर अकाल पडेगा और इसी कारण हमारे राजा ने हमे आपके राज्य मे भिजवाया है। तब राजा ने दोनो को जीवित लौटा दिया। इस प्रकार स्वाध्याय से विद्वत्ता का फल सुस्पष्ट है।

स्वाध्याय से महान तप का लाभ– स्वाध्याय ऐसा आन्तरिक तप है कि जिसकी समानता अन्य तप नही कर सकते। प्रभु ने फरमाया है–

'सज्झाएण सम तवो नावि अत्थि नावि होइ।
अर्थात्–स्वाध्याय के समान तप न तो है और न होगा।

(४) स्वाध्याय से सर्व दु.खो से मुक्ति– सब दु खो की एक रामबाण दवा है– स्वाध्याय। कहा है–'सज्झाए वा निउत्तेण, सव्व दुक्ख विमोक्खणे।'[1] इससे अलौकिक शाति मिलती है। कहा है– स्वाध्याये शान्ति दत्तमा।'[2]

---

१ उत्तरा २६/१०

२ महाभारत शान्ति पर्व १८४–२।

(५) स्वाध्याय से कर्म क्षय होते है– बहुसंचित कठोर कर्म भी स्वाध्याय से सहज क्षय हो जाते है। शास्त्र मे कहा है– 'बहु भवे सचिय खलु सज्झाएण खवेइ।' अर्थात् बहुत भवो के संचित कर्म स्वाध्याय से क्षय हो जाते हैं। स्वाध्याय कामना रहित साधना, मात्र कर्मक्षय करने हेतु करने की प्रेरणा देता है।

(६) स्वाध्याय से रत्नत्रय की उपलब्धि– सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र इन तीनो की महान उपलब्धि का सहज साधन स्वाध्याय है। कहा भी है 'पढम नाण तओ दया।'[1] अर्थात् ज्ञान-स्वाध्याय से ज्ञान दर्शनपूर्वक चारित्र की उपलब्धि होती है।

(७) सच्चे साधुओ और श्रावको की जननी– भूतकाल मे अनेक शासन प्रभावक बहुश्रुतधर चारित्रनिष्ठ सत हुए है। दृढधर्मी प्रियधर्मी आगमज्ञ श्रावक भी अनेक हुए है। वे सब स्वाध्याय के बल से हुए है। स्वाध्याय से ही चतुर्विध सघ मे ज्योति और दीप्ति आती है। कहा है–

'करलो करलो ओ प्यारे सज्जनो जिनवाणी का ज्ञान।।
जिसको पढने से मति निर्मल, जगे त्याग तप भाव।
क्षमा, दया, मृदु भाव विश्व मे, फैले हो कल्याण।।करलो२।।
पाप पुण्य का भेद समझकर, विधि युत देवो दान।
कर्म बध का मार्ग घटाकर, कर लेवो उत्थान।।करलो२।।

(८) आत्मिक शक्तिया जाग्रत होती है– जैसे माचिस की तीली मे अग्नि छिपी रहती है, जो घर्षण से प्रगट हो जाती हे। वैसे ही निरंतर स्वाध्याय से सुप्त आत्मिक शक्तिया भी प्रगट हो जाती है और आत्मा स्वाध्याय से ध्यान और समाधि की स्थिति मे पहुच जाती है।

(९) अन्य विविध लाभ– स्थानाग सूत्र ठाणा ५ मे स्वाध्याय के निम्न लाभ बताए है–

(i) श्रुत का सग्रह होता है। (ii) श्रुतज्ञान से शिष्य उपकृत हो प्रेम से श्रुत की सेवा करता है। (iii) ज्ञानावरणीय कर्म निर्जरित होते है।

---

१ दशवै ४/१०

(iv) अभ्यस्त श्रुत विशेष रूप से स्थिर होता है। (v) निरन्तर स्वाध्याय से सूत्र विच्छिन्न नही होते।

आचार्य अकलक ने तत्वार्थराजवार्तिक मे स्वाध्याय के लाभ इस प्रकार प्रगट किए है–

(i) बुद्धि निर्मल होती है। (ii) प्रशान्त अध्यवसाय की प्राप्ति होती है। (iii) शासन की रक्षा होती है। (iv) सशय की निवृत्ति होती है। (v) परवादियो की शकाओ के निरसन की शक्ति प्राप्त होती है। (vi) तप त्याग की वृद्धि होती है तथा (vii) अतिचारो की शुद्धि होती है।

स्वाध्याय का महत्त्व :

(१) सर्व प्रकाशक ज्ञान का मुख्य साधन– 'नाणस्स सव्वस्स पगासणाए।'[1] के अनुसार ज्ञान रूपी–अरूपी सभी तत्त्वो का प्रकाशक है। ऐसे आत्मा के महान गुण ज्ञान का मुख्य साधन स्वाध्याय है। कारण स्वाध्याय से ज्ञान को आच्छादित करने वाले कर्म क्षय होते है। कहा है–'सज्झाएण नाणावरणिज्ज कम्म खवेइ।'[2]

(२) सच्चा मार्गदर्शक– स्वाध्याय टार्च (बैटरी) के समान मार्गदर्शक है। एक सज्जन सपरिवार रात्रि मे टार्च लेकर घूमने गए। तूफान से बिजली बद हो गई। टार्च गिर पडी। पत्नी ने कहा–टार्च जलाओ, कोई चीज गिरी है। सज्जन बोले–टार्च ही तो गिर पडी क्या जलाऊं? यह एक दृष्टान्त है। अज्ञान रूपी अन्धकार मे विषय, कषाय रूपी तूफान मे फसे व्यक्ति के लिए स्वाध्याय टार्च है। उसे साथ रखे तो ससार रूपी अटवी के सकटों से बचकर गन्तव्य स्थान को, सानंद पहुंचा जा सकता है। किन्तु जो स्वाध्याय रूपी टार्च को व्यर्थ का बोझा मान त्याग देता है, वो चौरासी लक्ष योनियों मे मारा–मारा भटकता रहता है।

---

१ उत्तरा ३२/२

२ उत्तरा २९/१८

(३) स्वाध्याय बिना जप–तप भी सार्थक नही– बिना स्वाध्याय के जप–तप, पूजा–पाठ आदि सभी का उपयुक्त फल नही मिलता है। आगमकार कहते हैं–"चाहे कोई साधक मासिक तप, वार्षिक तप और अनशन भी कर लेता है किन्तु यदि वह स्वाध्याय और ध्यान से रहित है तो एक उपवास का फल भी नही पाता है।"[१]

(४) आत्मा का परम हितैषी– स्वाध्याय आत्मा का परम हितैषी व मित्रवत् है। वह आनादि से अज्ञान व मोह के फदे में फंसी बेभान आत्मा को जागृत कर आत्मभान कराता है। वह बहिरात्मा को अन्तरात्मा, अन्तरात्मा को महात्मा और महात्मा को परमात्मा बनाने में परम सहायक होता है। इस प्रसग मे यह पद मननीय है–

करलो श्रुतवाणी का पाठ भविक जन मन मल हरने को।
बिन स्वाध्याय ज्ञान नहीं होगा, ज्योति जगाने को।
राग द्वेष की गांठ गले नहीं बोधि मिलाने को।
जीवादिक स्वाध्याय से जानो करणी करने को।
बंध मोक्ष का ज्ञान करो, भव भ्रमण मिटाने को।।

उपसंहार :

अनादि काल से आत्मा ने पराध्याय मे पडकर अनत बार समग्र संसार का ज्ञान भूगोल, खगोल, इतिहास, भौतिक विज्ञान, ज्योतिष व गणित आदि से किया। सभी विद्याएँ सीखीं। बहत्तर कलाओ का ज्ञान भी किया, पर पराध्याय के माध्यम से आत्मा का किंचित भी लाभ नही हुआ। स्वाध्याय के सम्मुख न होने से आत्मा द्वारा किया गया अनत–अनंत पुरुषार्थ भी भव–अटवी के भटकाव मे थोडी भी कमी नहीं ला सका। किन्तु जिन भव्य आत्माओ ने स्वाध्याय रूपी टार्च को अपनाया, वे उसके प्रकाश को पाकर सहज भव–अटवी से मुक्त हो गए। स्वाध्याय की इस अतिशय विशेषता एव महत्ता को समझकर ही प्राचीन काल मे, जब विद्यार्थी

१ महानिशीथ, गाथा १–२।

विद्याध्ययन कर गुरु से विदा लेते तो गुरु उन्हे आशीर्वाद देते हुए अन्तिम सीख देते हुए कहते–'स्वाध्यायान्मा प्रमद '[१]

वस्तुत , स्वाध्याय एक ऐसी महान सद्प्रवृत्ति है कि जो वहिरात्मा को मिथ्यात्व से समकिती, समकिती से देश विरति, देश विरति से सर्व विरति और सर्व विरति से पूर्ण वीतरागत्त्व की ओर अग्रसित करता है। जो उन्मार्गी व शिथिलाचारी है, उन्हे भी धर्म के सन्मुख कर दृढधर्मी, प्रियधर्मी बनाता है और अन्त में सर्व दु खो एवं कर्मो से आत्मा को मुक्त कर, उसे परमात्मा बना देता है।



१ तैतिरीयोपनिषद्/१/११/१

१०. सामायिक

सभी धर्मों मे आत्म साधना की अनेक पद्धतियॉ प्रचलित है। जैसे पूजा, प्रार्थना, नमाज, जप, तप, भजन, कीर्तन, सत्सग आदि। जैन धर्म मे भी आत्म साधनार्थ अनेक विधि–विधान है किन्तु उन सव में सामायिक का स्थान सर्वोपरि है। कारण, सामायिक साधना का अविभाज्य अग है। सामायिक जैन धर्म का एक विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है जो मुख्यत आत्मसाधना से सम्बन्धित है। यह आत्मा को विभाव से हटा समता भाव रूप स्वभाव में अवस्थित करने की विशिष्ट आध्यात्मिक प्रक्रिया है। पॉच चारित्र में भी सामायिक प्रथम व प्रधान है। पूजा, पाठ, जप, तप, प्रार्थना सभी से सामाायिक का महत्त्व सर्वाधिक है। इसी कारण कहा है–

'जिन पूजा से श्रेष्ठ है, जिन आज्ञा श्रेयकार।
आज्ञा मोक्ष, अनाज्ञा से बढ जाता संसार।।'[1]

भगवान ने कभी उनकी पूजा करने का निर्देश नही दिया पर सामायिक प्रतिक्रमण पौषधादि जो संवर–निर्जरा रूप धर्म है, की आराधना करने की आज्ञा ही नहीं दी, वरन जो साधक यह साधना नहीं करते, उन्हें विराधक बताया। जो जप, तप, पूजा, पाठ, प्रार्थना, स्वाध्याय आदि धर्म क्रियायें सामायिक सहित करते हैं, तो उनका फल और भी विशिष्ट व अधिक बढ जाता है।

---

१. श्रीमद् राजचन्द्र के पद से।

अर्थ एव व्याख्या :

(१) सम+आयिक = सामायिक। सम=समत्व, आयिक= आवे। अर्थात् जिससे समत्व भाव आवे या समत्व भाव मे रहे। कहा है–

"जो समो सव्व भूएसु, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइय होइ, इह केवलि भासिय।।"[१]

महाग्रथराज धवला मे भी कहा है–"सत्तु–मित्त मणि पासाण सुवण्ण–मट्टियासु, राग देसाभावो समदाणाम्। अर्थात् शत्रु, मणि, पाषाण और स्वर्ण, मिट्टी मे राग–द्वेष के अभाव को समता कहा गया है।[२]

(२) सम=रागद्वेष रहित, आय=ज्ञान, दर्शन, चरित्र, इक= मोक्ष रूप भाव हो। अर्थात् जिससे रागद्वेष टूटे, ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे प्रवृत्ति हो व मोक्ष रूप एक शुद्ध भाव की उपलब्धि हो। कहा भी है–

समता भाव धारण करे, जे देखे निज रूप।
सामायिक तेने कहे, जे सुख शान्ति स्वरूप।।

समता व शान्ति के साथ समस्त पापो का त्याग कर कम से कम ४८ मिनिट तक धर्म साधना के अनुकूल स्थान पर वैठ कर, ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे प्रवृत्ति करना।

(३) सम का विधेयात्मक अर्थ समस्त जीवो पर मैत्री भाव रखना भी है। कहा है–'सर्व जीवेषु मैत्री साम साम्नो आय लाभ समाय स स्व सामायिकम्।'

(४) समय=आत्मा, आयिक=अवस्थित। अर्थात् जिससे आत्मा मे, स्वभाव में अवस्थित हुआ जा सके। प्रभु ने कहा हैं '– आया खलु सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे[३]। वस्तुत आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही

---

१ आवश्यक निर्युक्ति व अनुयोग द्वार सूत्र गा १२८ ।
२ धवला, पुस्तक सख्या ८, खड ३, सूत्र ४१ । ३ भगवती सूत्र १/९ ।

सामायिक का प्रयोजन है।

अनादिकाल से आत्मा पर भावो में भटकती रही है। कवि कहता है–

"हम तो कब हु न निज घर आए।
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराए।।
पर पद निज पद मान मगन है, पर परिणित लिपटाए।
शुद्ध–बुद्ध सुख कंद मनोहर, चेतन भाव न भाए।।
नर पशु देव नरक निज मान्यो, पर जय बुद्धि लहाए।
अमल अखंड अतुल अविनाशी, आतम गुण नहीं गाए।।"[1]

(५) सम=शमन, आयिक=होवे। अर्थात जिससे क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का शमन {त्याग} होवे। परमातम पद की सिद्धि के लिए क्रोधादि राग–द्वेष का त्याग परम आवश्यक है। कहा भी है–

"लाख बात की बात यह, तो को देऊ बताय।
जो परमातम पद चहे, तो राग–द्वेष तज भाय।।
राग–द्वेष त्यागे बिना, परमातम पद नाहिं।
कोटि–कोटि जप–तप करे, सब ही वृथा जाहि।।"

अत परमात्म पद की सिद्धि चाहने वालों के लिए सामायिक का अत्यधिक महत्त्व है।

(६) "समता सर्व भूतेषु, संयम· शुभ भावना।
आर्त्त रौद्र परित्यागस्‌ तद्धि सामायिक व्रतम्।।"

अर्थात् सब प्राणियों के प्रति समभाव और संयम में शुभ भाव होना तथा आर्त्त, रौद्र ध्यान का परित्याग होवे, वह सामायिक है। इसी प्रकार की व्याख्या आचार्य हेमचन्द्र ने भी की है। उन्होंने कहा है–

"त्यक्तार्त रौद्र ध्यानस्य, त्यक्त सावद्य कर्मणा।
मुहुर्त समताया ता विदु सामायिक व्रतम।।"

१ प दौलतराम जी द्वारा विरचित।

अर्थात् अशुभ ध्यान और पापमय कार्यों का त्याग कर, मुहुर्त काल का आत्म चिंतन, समत्व चिंतन एव स्वाध्याय आदि मे लीन होना सामायिक है।

(७) विषय, कषाय, आरम्भ, परिग्रह और सावद्य योगो से निवृत्ति तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप समभाव मे प्रवृत्ति होवे, उसे सामायिक कहते है।

(८) 'समये कर्त्तव्यम् इति सामायिक।'[१] अर्थात् जो समय पर कर्त्तव्य रूप से किया जावे, वह सामायिक है।

उपर्युक्त व्याख्याओ से सुस्पष्ट है कि सावद्य योगो (समस्त पापों) का त्याग कर, कम से कम अन्तर मुहुर्त (४८ मिनिट) तक द्रव्य व भाव से रत्नत्रय की साधना मे अवस्थित होना शुद्ध सामायिक है। सामायिक ग्रहण करने का पाठ भी इसी भाव से युक्त है।[२]

सामायिक के ६ लक्षण :[३]

(१) समता, (२) राग–द्वेष का त्याग, (३) आत्म–स्थिरता, (४) सावद्य योग निवृत्ति, (५) सयम, तप आदि के साथ एकता व (६) नित्यनैमित्तिक कर्म व शास्त्र स्वाध्याय।

आचार्य अमितगति ने 'सामायिक द्वात्रिंशका' मे सामायिक साधक के साधना के सूत्र बताते हुए कहा है–

'सत्वेसु मैत्री गुणिषु प्रमोद, क्लिष्टेषुजीवेसु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थ भाव विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विद् धातु देव।।''

अर्थात्– हे वीतराग प्रभो। मेरी आत्मा सदा प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भाव, गुणीजनो के प्रति प्रमोद भाव, दुखियो के प्रति करुणा भाव

---

१ सामायिक सूत्र।
२ करेमि भते सामाइय।
३ जिनवाणी, अक २/८४, पृ २३।

और द्वेष भाव रखने वालो के साथ माध्यस्थ भाव रखे। यह चितन सामायिक साधक का होना चाहिये।

सामायिक के भेद :

(अ) दो भेद –

(i) द्रव्य सामायिक– 'अणुओगो दव्वं अर्थात् बिना उपयोग (या समभाव) के मात्र सामायिक के उपकरण ग्रहण कर सामायिक की वेशभूषा लेकर सामायिक की क्रिया करना।

सामायिक के उपकरण इस प्रकार है–

(१) आसन (सूती या ऊनी), (२) सफेद चोल पट्टा, (३) सफेद उत्तरासन (दुपट्टा), (४) मुँहपत्ती, (५) माला, (६) पूजणी, (७) स्वाध्यायार्थ–धार्मिक साहित्य आदि। यह सामायिक अभव्य को भी होती है।

(ii) भाव सामायिक– पूर्वोक्त व्याख्यानुसार सामायिक मे उपयोग सहित अवस्थित होना भाव सामायिक है।

(ब) तीन भेद[1] – समभाव की प्राप्ति तीन प्रकार से होती है। इस अपेक्षा से सामायिक के तीन भेद है–

(i) श्रुत सामायिक– जिनवाणी का विधि पूर्वक पठन–पाठन श्रुत सामायिक है जो व्यवहारापेक्षा है। यह अभव्य के भी होती है कारण अभव्य भी नवपूर्व तक के ज्ञान का पाठी होता है।

(ii) दर्शन सामायिक– तत्त्व का सम्यग् श्रद्धान दर्शन सामायिक है। यह शुद्ध श्रद्धा जो दर्शन मोहनीय व चारित्र मोहनीय के उपशम, क्षयोपशम या क्षय से प्राप्त होती है की अपेक्षा से हैं।

(iii) चारित्र सामायिक– सामायिक चारित्र की पालना चारित्र सामायिक है। यह पचम गुणस्थान से पूर्व नही होती है। यह भी दो प्रकार की है–

---

१ आवश्यक नि गाथा ५६५।

(१) सर्व से, (२) देश से। सर्व से (तीनकरण तीन योग से) यावज्जीवन के लिए होती है जो मुनि ग्रहण करते है। देश मे कुछ काल (कम से कम ४८ मिनिट) के लिए ग्रहण की जाती है। देश सामायिक के नवभग होते है, यथा–

(१) तीन करण तीन योग, (२) तीन करण दो योग से, (३) तीन करण एक योग से, (४) दो करण तीन योग से, (५) दो करण दो योग से, (६) दो करण एक योग से, (७) एक करण तीन योग से, (८) एक करण दो योग से, (६) एक करण एक योग से।

इन भगो मे श्रावको के द्वारा मुख्यत चौथे भग– दो करण तीन योग से सामायिक करने का व्यवहार प्रचलित है। कारण मन की अनुमोदना गृहस्थ दशा मे रोकना अति कठिन होने से, तीन करण तीन योग से सामायिक नही की जाती है तथा अन्य भगो से सामायिक मे अधिक दोप लगने से उनमे भी सामायिक ग्रहण करने का व्यवहार प्रचलित नही है। सामायिक मे एक करण खुला क्यो रखा जाता है, इस सदर्भ मे भगवती सूत्र श ८ उ ५ सू १ मे गोशालक के शिष्यो ने श्रमण निर्ग्रंथो से पूछा कि सामायिक मे बैठे श्रावक, वस्त्र आदि चोरी होने पर सामायिक के बाद उनकी गवेषणा करे तो वह अपने की करता है या दूसरे की? कारण सामायिक करते समय उसने उनका त्याग कर दिया था। उत्तर मे प्रभु ने कहा–

श्रावक सामायिक मे उन्हे अपना नही मानता, पर उनमे अनुमति रूप ममता भाव का पत्याख्यान नही करने से, वह अपने वस्त्रो की गवेषणा करता है, ऐसा कहना उचित है। अत श्रावक अनुमोदन की छूट रखता है।

कोई विशिष्ट साधक गृहस्थ जो मन की अनुमोदना भी रोक सकते है, वे तीन करण तीन योग से भी सामायिक कर सकते है, तथा जो दो करण तीन योग से भी सामायिक नही कर सकते, तो वे शेष किसी

भी भग से संवर (व्यवहार मे सामायिक दो करण तीन योग से नीचे स्तर की मान्य न होने से), ग्रहण कर सकते है।

चार प्रकार से –

(i) द्रव्य से – उपकरणों की सादगी से।

(ii) क्षेत्र से – निरवद्य निर्विकार धर्म स्थल।

(iii) काल से – पूरे काल (कम से कम ४८ मिनिट)।

(iv) भाव से – ३२ दोष टालकर निरतिचार समभावपूर्वक सामायिक करना।

(स) चार भेद –

(i) श्रुत (ii) सम्यक्त्व (iii) देश विरति व (iv) सर्व विरति सामायिक।

(द) छह भेद :[1]

(i) नाम – सामायिक सज्ञा को नाम सामायिक कहते है।

(ii) स्थापना – साधना के उपकरण जो स्थापित किये जाते है जैसे मुखवस्त्रिका, पूँजनी आदि।

(iii) द्रव्य – द्रव्य दृष्टि से ६ काया के जीवो की रक्षा का प्रयास।

(iv) क्षेत्र – जिस क्षेत्र मे बैठे वहा २ करण ३ योग से हिंसा न करना।

(v) काल – ४८ मिनट तक के काल मे हिंसा का त्याग करना।

(vi) भाव – सावद्य योगों का त्याग करना।

उपर्युक्त ६ ही स्थानो मे समभाव धारण करना पूर्ण व शुद्ध सामायिक है।

सामायिक विभिन्न नय दृष्टियो से –

सामायिक का यथार्थ स्वरूप समझने के लिए यहा उस पर सात

---

१ आचार्य नानालालजी म० सा०, श्रमणोपासक १०/८४।

नय की अपेक्षा विचार किया जाता है—

(i) नैगम नय से—सामायिक करने की आज्ञा लेने पर तभी से सामायिक मान ली जाती है।

(ii) सग्रह नय से—सामायिक करने की आज्ञा लेकर, सामायिक सम्बन्धी समस्त उपकरण पूँजनी, मुहपत्ती, बैठका, उत्तरासन आदि ग्रहित कर लेने से सामायिक मान ली जाती है।

(iii) व्यवहार नय से—सामायिक की आज्ञा व उपकरण लेकर सामायिक के लिए बैठ तदनुकूल व्यवहार आरभ करने पर सामायिक मान ली जाती है।

(iv) ऋजुसूत्र नय से – सामायिक के लिए बैठने पर जब सामायिक पाठ बोल पच्चक्खाण कर तदनुकूल क्रिया करे तब से सामायिक मानी जाती है।

(v) शब्द नय से – जब सामायिक मे शब्द के अनुसार उपयोगवान होवे, तब सामायिक मानी जाती है।

(vi) समभिरूढ नय से—शब्द के अनुसार मात्र उपयोगवान ही न होवे, वरन् तदनुरूप क्रियावान होने पर सामायिक मानी जाती है। जैसे अप्रमत्त सयमी।

(vii) एव भूतनय से – अप्रमत्त सयमी मे भी सब मे सामायिक नही मानी जाती। आत्म प्रदेशो मे पूर्ण स्थिरता हो, कषाय व योग से विरत, त्रिगुप्त सयमी, शैलेशीदशा प्राप्त चौदहवे गुणस्थानवर्ती आत्मा को ही सामायिक मानता है।

सामायिक के बत्तीस दोष :

(क) दस मन के दोष –

अविवेगो जसो कित्ती, लाभत्थी गव्व भय नियाणत्थी।
ससय रोस अविणउ, अबहुमाण ए दस दोसा भणियव्वा।।

अर्थात् (१) अविवेक जैसे सावद्य–निरवद्य का ज्ञान न होना। (२)

यश कीर्ति के लिए करना। (३) धनादि के लाभ हेतु करना। (४) अहंकार से करना। जैसे मद आठ प्रकार का है–

"जाति लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या, अधिकार।
इनका गर्व न कीजिए, ये मद आठ प्रकार।।"

इनमे से कोई भी मद करना दोष है। बडों की उपेक्षा कर स्वय सामायिक ग्रहण करने मे भी यह दोष लगता है।

(५) भय–राजा आदि का (६) नियाणा करना (७) सशय करना–फल आदि मे (८) रोष (९) अविनय (१०) अबहुमान–भक्तिभाव से न करना।

(ख) दस वचन के दोष–

"कुवयण सहसाकारे, सच्छदं, सखेव, कलह च।
विगहा विहासोऽसुद्ध, निरवेक्खो मुणमुणा दोसादस।।"

अर्थात् (१) कुवचन बोलना (२) सहसाकार–बिना विचारे बोलना (३) स्वच्छद–रागवर्धक गीतादि गाना (४) संक्षेप–पाठों को संक्षेप मे बोलना (५) कलह करना (६) विकथा करना (७) हास्य (८) अशुद्ध बोलना (९) निरपेक्ष–बिना उपयोग शास्त्र की उपेक्षा कर बोलना व (१०) गुणमुण–अस्पष्ट बोलना।

(ग) काया के बारह दोष–

"कुआसण, चलासण, चल दिट्ठि, सावज्ज किरिया लंबणा, कुंचणपसारणं।
आलस्स, मोडण, मल विमासण, निद्दा वेयावच्चति, बारस्स काय दोसा।।"

अर्थात् (१) कुआसन (अहंकार आदि के आसन) से बैठना (२) अस्थिर आसन रखना (३) इधर उधर दृष्टि फेरना (४) सावद्य कार्य जैसे सिलाई आदि करना (५) आलम्बन–दीवार आदि का टेका लेना (६) आकुञ्च प्रसारण–अकारण हाथ पांव फैलाना, सिमेटना (७) आलस्य करना (८) मोटन–हाथ पांव की अंगुलियों का कडका निकालना (९) मल–मैल उतारना (१०) विमासन–शोकासन से बैठना (११) निद्रा लेना व (१२) वैयावृत्य कराना (बिना कारण)।

सामायिक के पाच अतिचार :

(१) मन का दुष्प्रयोग (२) वचन का दुष्प्रयोग (३) काया का दुष्प्रयोग (४) स्मृति भ्रंश (जैसे सामायिक ग्रहण का समय याद न करना) तथा (५) अनवस्थित (स्थिर न रहकर) करना। इनमे प्रथम के तीन अतिचारो पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। कारण योगो के दुष्प्रयोग से सामायिक अर्थहीन रूढिवत् ही नही, वरन आश्रव का कारण हो जाती है। इस सम्बन्ध मे जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० सा० बडे धर्म प्रभावक हुए है, उनके द्वारा अपने प्रवचन मे रूढिवत् सामायिक करने पर दिया गया व्यगात्मक दृष्टान्त यहा दिया जाता है–

'एक बहिन नित्य सामायिक करती थी। एक दिन जब वह सामायिक कर रही थी, घर पर कोई नही था। तभी उसके पति दुकान की चाबी व तोलने की पसेरी (पाच सेर का बाट) लेने आए। पत्नि सामायिक मे थी। वस्तुए कौन दे ? इसके साथ ही बहिन ने पाडे को गुड की भेली खाते भी देख लिया था। वह अपने पति को इन सब की जानकारी देने हेतु सामायिक मे बैठी ही एक नई चौबीसी बनाकर हाथो का सकेत देते हुए गाने लगती है–

"वन्दौ पहले श्री अरिहन्त।
कूॅची तो मेडा पडन्त।
पाडा तो भेली चरन्त।
पसेरी घट्टी पडन्त, अर्ज क्या करू जिन जी।।"

पत्नी के निर्देश पर पति ने सभी कार्य कर लिए। यह है मन वचन काया का दुष्पयोग करते हुए बाजारू सामायिक का नमूना। इस दुष्पवृत्ति से सामायिक व सामायिक करने वाले, दोनो ही बदनाम होते है।

सामायिक के लाभ :

सामायिक से समभाव की सहज उपलब्धि होती हे राग–द्वेष से मुक्ति मिलती है, पुराने कर्मों की निर्जरा होती है, मानसिक शक्ति मिलती है, आत्म चिंतन का अवसर मिलता है तथा सच्चे शाश्वत सुख की अन्तत

उपलब्धि होती है। इसमे पापों का त्याग होने से अशुभ कर्माश्रव रुक जाता है। कुछ भाई–बहिन अज्ञान से सामायिक को निरर्थक बता समय गंवाना कहते है। जो उचित नही है।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस नियमित एक घण्टा आत्मचिंतन (जो एक प्रकार से सामायिक है) मे बैठा करते थे। एक बार एक व्यक्ति ने उनसे कहा– आपका एक–एक क्षण राष्ट्र के लिए बडा मूल्यवान है, फिर आप एक घटा फालतू निष्क्रिय बैठकर क्यो गंवाते है? नेताजी ने उत्तर दिया– मै एक घटा फालतू नही गवाता। जब मै निरन्तर काम करते हुए थक जाता हूँ तो आत्मचिंतन से पुन ताजगी पाता हू। मै अपनी अंतर की बैटरी जो निरंतर काम करते रहने से डिस्चार्ज हो जाती है, को एक घण्टे मे प्रभु के ध्यान से पुन: चार्ज कर लेता हूं।

बस, इसी प्रकार सामायिक भी हमे नित्य नवचेतना व स्फुरणा देती है।

सामायिक से कर्मक्षय व उत्तम साधनों की उपलब्धि–

शुद्ध सामायिक कर्मक्षय और परम्परा से मोक्ष व मोक्ष प्राप्ति मे सहायक अनुकूल उत्तम साधनो की सहज उपलब्धि का हेतु है। सामायिक में स्वाध्याय किया जाता है जिससे ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय का क्षयोपशम बढता है जिससे आगामी भव मे अधिक सतत क्षयोपशम वाली इन्द्रिया व मन मिलते है। सामायिक मे जीवों को साता दी जाती है। जिससे सातावेदनीय का बध होता है जिससे आगामी भव में नेत्र, कान आदि इन्द्रियां निरोगी सशक्त व साताकारी मिलती है। सामायिक मे ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रय की साधना की जाती है, जिससे आगामी भव मे इन्द्रिया अविकारी एवं निर्मल ज्ञान वाली होती है तथा संत दर्शन व समागम के सहज सुयोग मिलते है।। सामायिक में अहिंसा, सत्य और विनय आदि के पालन से दीर्घ शुभ आयुष्य का वंधन होता है। सामायिक में मन वचन काया से सत्यता व पवित्रता की साधना की जाती है। जिससे सुबाहु कुमार

जैसी सभी अनुकूल और उत्तम सामग्री प्राप्त होती है। सामायिक मे जीव अहकार का विसर्जन कर विनय एव लघुत्व से भावित होता है, जिससे उत्तम उच्च गौत्र का बध होता है और आगामी भव मे उत्तम कुल मे पैदा होता है। सामायिक मे पडित वीर्य का प्रयोग होता है, इससे आगामी भव में इन्द्रिया सशक्त मिलती है और क्षयोपशम भी निर्मल होता है।

इस प्रकार सामायिक की साधना सिद्ध दशा प्राप्त न हो तब तक जीव के लिए सर्व प्रकार से हितकारी एव लाभ देने वाली होती है ओर अत मे जीव सामायिक साधना से परम सुखी हो, सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाता है।

सामायिक का फल ·

एक शुद्ध सामायिक (निर्दोष व निरतिचार) करने से ९२, ५९, २५, ९२५ ३/८ पल्योपम प्रमाण देवायु या इतने देवायु तुल्य पुण्य का बध होता है। पूर्व मे नरकायु के दलिक सचित किए हो तो वे भी सामायिक से क्षय हो जाते है।

इस सदर्भ मे राजा श्रेणिक व पूणिया श्रावक का कथानक अवलोकनीय है। पूणिया श्रावक बारह व्रतधारी था और नित्य शुद्ध सामायिक करता था। एक बार राजा श्रेणिक के पूछने पर कि उसका आगामी भव क्या होगा? प्रभु महावीर ने उत्तर मे उसका नरक जाना बतलाया। इस पर राजा श्रेणिक बडे चिन्तित हुए और प्रभु से नरक न जाने का उपाय बताने का आग्रह किया। प्रभु ने नरक मे न जाने के चार उपाय बताये, उनमें एक उपाय पूणिया श्रावक की एक सामायिक खरीद लेने का बताया। इस पर राजा श्रेणिक ने पूणिया को एक सामायिक का मूल्य लेकर देने को कहा। पूणिया ने कहा—मुझे तो सामायिक का मूल्य ज्ञात नही, आप प्रभु से ही मूल्य पूछ लेवे। श्रेणिक महाराज ने जब प्रभु से मूल्य बताने को कहा तो भ० महावीर ने स्पष्ट किया कि तुम्हारे राज्य मे जो ५२ डुगरिया सोने की है, वे तो एक सामायिक के खरीद की दलाली

में ही चली जावेंगी, फिर मूल्य कितना होगा, विचार करलें। राजा श्रेणिक यह सुनकर चकित रह गया और राजा होकर भी वह एक सामायिक नही खरीद सका।

सामायिक से क्या लाभ ? इस सम्बन्ध मे प्रभु से पूछा गया–

प्रश्न–सामाइएणं भंते, जीवे कि जणयइ ?

(हे भगवान ! सामायिक से जीव को क्या लाभ होता है ?)

प्रभु ने उत्तर दिया–'सामाइएणं सावज्ज जोग विरइं जणयइ। सामायिक से जीव को सावद्य योग (पाप प्रवृत्ति) से दूर होने रूप महाफल की प्राप्ति होती है।)

वस्तुत आत्मा के लिए जो असमाधि के कारण है उनसे मुक्त होने के लिए सामायिक की जाती है। इसी कारण सामायिक मे उपधियो के कारण होने वाली पाप प्रवृत्तियो का त्याग किया जाता है। यह फल भी बहुत अंशो में, सामायिक शुद्ध भाव से ग्रहण करते ही प्रत्यक्ष मिल जाता है। कारण जैसे ही आत्मिक सुख मे बाधक प्रवृत्तियो से छुटकारा मिलता है, समाधि का अनुभव उसी क्षण होने लगता है। यदि ऐसा अनुभव न हो, तो समझ लो मात्र द्रव्य सामायिक हुई है, सच्ची भाव सामायिक नही हुई है। सामायिक से सहज रूप से नरक दलिक क्षय होकर देवभव के दलिक सचित होते है। किन्तु सामायिक मे ऐसी कामना भी नहीं की जानी चाहिए।

शुद्ध सामायिक मोक्ष प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है और यही सामायिक का सार है। सत कहते है–

"बार–बार गुरुवर समझाते सामायिक का सार।
शुद्ध मन करने से होता है, भव जल पार।।टेर।।
सामायिक से जीवन उज्ज्वल बनता है।
करो साथ स्वाध्याय ज्ञान भी बढता है।
इस भव परभव के दुख कटते, मिलती शाति अपार।।1।।

मन वच काया के बत्तीसो दोष टले।
कर्म वध कारण से जीवन मोड चले।
जीवन समतामय बन जावे, टलते पाप अठार।।२।।

सामायिक का महत्त्व :

सामायिक को चौदह पूर्वो तथा द्वादशागी का सार कहा है–"सामाइय सखेवो चोदस्स पुव्वत्थ पिडोत्ति।।"

सामायिक का महत्त्व इसी से सुस्पष्ट है कि इसे सभी धर्म क्रियाओ मे सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। सभी सप्रदायो मे सामायिक का प्रचलन है। दिगम्बर सम्प्रदाय मे सामायिक करने की प्रथा आजकल कम दिखाई देती है, किन्तु उनके यहॉ भी नित्य सामायिक करने का विधान है। कहा है–

"धर उर समता भाव, नित्य सामायिक करिये।
पर्व चतुष्टय[1] माय, पाप तज पौषध करिये[2]।।"

आचार्य कुदकुद ने भी कहा है–आत्मा को पापाश्रव से दूर करने के लिए सामायिक करना उत्तम उपाय है[3]। श्रावक के षट् आवश्यक मे प्रथम स्थान सामायिक को दिया गया है।

षट् कर्म (कर्त्तव्यो) मे भी सामायिक एक है। सामायिक का महत्त्व वडे से बडे दान से भी अधिक बताया गया है। शास्त्रो मे कहा गया है–

"दिवसे दिवसे लक्ख देइ, सुवणस्स खडिय एगो।
एगो पुन सामाइय, न करेइ पहुप्पए तस्स[4]।।

अर्थात्– "लाख खडी सोना तणी, लाख वर्ष दे दान।
सामायिक तुल्य नही भाख्यो श्री भगवान।।"

---

१ दो अष्टमी, दो चतुर्दशी।
२ छहढाला से।
३ मूलाचार ७/३८।
४ आ० भद्रबाहु द्वारा रचित आवश्यक निर्युक्ति की ७९६ वी गाथा एव कल्पसूत्र की गाथा।

सामायिक का ध्यान से भी अधिक महत्त्व है। आचार्य रजनीश ने भी इस तथ्य को स्वीकारा है। उन्होने लिखा है– "सामायिक का ध्यान से ज्यादा मूल्य है। समय आत्मा का नाम है और सामायिक का अर्थ है आत्मा मे होना। ध्यान मे भ्रान्ति है, कारण उसको अग्रेजी में 'मेडीटेट' कहते है जिसका अर्थ है किसी चीज पर ध्यान लगाना। किन्तु सामायिक मे तो अपने मे ही स्थित होने की क्रिया है"[1] अतगड सूत्र मे स्थान २ पर सामायिक की ग्यारह अगो मे गणना की है यथा– "सामाइय माहयाइ एक्कारए अगाह अहिज्जइ।।" अर्थात् उस आत्मा ने सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया। वास्तव मे सामायिक नाम का कोई अंग ही नही है। इससे स्पष्ट है कि सामायिक सहित अगों का अध्ययन होता है जो सामायिक का महत्व स्पष्ट करता है।

सामायिक मे साधु समान होना :

दीक्षा लेकर साधु बनना सभी के लिए सभव नही है, किन्तु गृहस्थ भी निर्दोष शुद्ध सामायिक करके, साधु समान बन सकता है और महान लाभ ले सकता है। सामायिक के समय मे गृहस्थ भी सावद्य योग त्यागकर, समभाव मे होने से साधु जैसा हो जाता है। 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' मे कहा है–

"सामायिके सारम्भा परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोप सृष्ट मुनिरिव गृहीतदा याति याति भाव।।
(गाथा १०२)

अर्थात् सामायिक मे गृहस्थ भी मुनि समान हो जाता है। क्योंकि दोनों ही के उस समय सपूर्ण आरम्भ–परिग्रह का त्याग होता है। केवल भिन्नता इतनी ही होती है कि गृहस्थ बाहर से वस्त्र पहिने रहता है। अंतरंग मे उनमे कोई भेद नही होता।

---

१ महावीर वाणी भा 3 पृ० ५०४।

उपसहार :

प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य सुख शान्ति प्राप्त करना है। इसके लिए सामायिक सब मे सरल व सीधा साधन है। सामान्य व कमजोर व्यक्ति भी इस साधन से, सुख शान्ति प्राप्त कर सकता है। सासारिक झझटो मे फंसे मानव के लिये एक उत्तम विश्राम स्थल है। सामायिक मे पाप निवृत्ति का सकल्प लेने से, अन्त.करण मे विषमता दूर हो समता और शान्ति की अनुभूति होती है। चित्त निर्मल और शान्त हो जाता है।

सासारिक क्लेशों व दुखो को नष्ट करने वाले कल्प वृक्ष, कामधेनु एव चिन्तामणि आदि जितने भी सुख के साधन है, इन सब साधनो से बढकर अनुपम सुख शान्ति देने वाली सामायिक साधना है। आज तक जितने भी जीव सिद्ध–बुद्ध मुक्त हुए, वे सभी सामायिक की कृपा से हुये है। कहा है–

"जे के वि गया मोक्ख, जे वि य गच्छति जे गमिस्सति।
ते सव्वे सामाइय माहप्पेण भणेयव्व।।"

अर्थात् भूतकाल मे जो मोक्ष गये, अभी जा रहे है और भविष्य मे जावेगे वे सब सामायिक के महत्त्व से ही समझना चाहिये।

तीर्थंकर प्रभु भी जब साधना मार्ग मे प्रवेश करते है तो सर्वप्रथम सामायिक चारित्र को ही स्वीकार करते है।

सामायिक की महत्ता बताते हुये आचार्य जिन भद्र गणि ने कहा है– 'जिस प्रकार धर्मास्तिकायादि सभी द्रव्यो का आधार आकाश है, उसी प्रकार सामायिक सभी मूल व उत्तर गुणो का, चरण करणादि गुणो का आधार है। बिना सामायिक के सयम या तपादि गुण टिक नही सकते।

सामायिक जीवन को सर्वतोमुखी समुन्नत कर सत्य शिव सुन्दरम् रूप करने, आकुलता–व्याकुलता मिटाने, सच्ची सुख शान्ति पाने, अनन्त परमातम पद की उपलब्धि का मुख्य साधन होने से, प्रत्येक साधक को नियमित अधिक से अधिक समय सामायिक मे देना श्रेयस्कर

है। जो भाई–बहिन कारणवशात् अधिक समय नहीं निकाल सकते, उन्हे भी कम से कम एक सामायिक तो करनी ही चाहिये। दिन रात मे चौबीस घण्टो मे प्रति घण्टा दो मिनट भी बचा कर निकाले तो एक सामायिक का समय ४८ मिनट सहज निकाल सकते है। नियमित सामायिक करने से विशेष लाभ होता है। जैसे शरीर को नित्य खुराक देकर पुष्ट करते है, वैसे ही आत्मा को सामायिक की खुराक से पुष्ट करना चाहिये। सामायिक आत्म साधना मे उन्नति और विकास करने का प्राथमिक व मुख्य साधन है। अन्त मे सामायिक के सदर्भ में स्व० पू० आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा द्वारा विरचित अति उपयोगी भजन यहाँ प्रस्तुत है–

जीवन उन्नत करना चाहो तो, सामायिक साधन कर लो।
आकुलता से बचना चाहो तो, सामायिक साधन कर लो।।टेर।।
तन धन परिजन सब सपने है, नश्वर जग मे नही अपने है।
अविनाशी सद्गुण पाना हो तो, सामायिक साधन कर लो।।१।।
चेतन निजघर को भूल रहा, परघर माया मे झूल रहा।
सद्चित्त आनन्द को पाना हो तो, सामायिक साधन कर लो।।२।।
विषयो मे निजगुण मत भूलो, अब काम क्रोध मे मत झूलो।
समता के सर मे नहाना हो तो, सामायिक साधन कर लो।।३।।
तन पुष्टिहित व्यायाम चला, मन पौषण को शुभ ध्यान भला।
आध्यात्मिक बल को पाना हो तो, सामायिक साधन कर लो।।४।।
सब जगजीवों मे बधुभाव, अपनालो तजकर वैर भाव।
सब जन के हित मे सुख मानो तो, सामायिक साधन कर लो।।५।।
निर्व्यसनी हो, प्रामाणिक हो, धोखा न किसी जन के सग हो।
ससार मे पूजा पाना हो तो, सामायिक साधन कर लो।।६।।
स्वाध्याय सामायिक सघ बने, सब जन सुनीति के भक्त बनें।
नरलोक मे स्वर्ग बसाना हो तो, सामायिक साधन कर लो।।७।।